ध्यानसाधनाविधि

आचार्य भिक्षु श्री युत्तधम्मो जी

मेरे गुरु आचार्य श्री टोंग सिरिंमंगलो को समर्पित,
जो मेरे लिए एक जीते जागते अनुस्मारक हैं कि,
गौतम बुद्ध कभी इस धरती पर चले थे।

भिक्षु श्री युत्तधम्मो

अनुवादक

हमारा यह सौभाग्य है कि हमें आचार्य भिक्षु श्री युत्तधम्मो जी ने अपने द्वारा लिखी पुस्तिका "HOW TO MEDITATE" का हिन्दी में अनुवाद करने का यह सुनहरा अवसर प्रदान किया है। हम आचार्य भिक्षु श्री युत्तधम्मो को अपना आभार प्रकट करते हुए उनका धन्यवाद करना चाहते हैं और यह आशा करते हैं कि उनका, ध्यान साधना विधि का प्रचार कर समाज सेवा करने का उद्देश्य पूरा हो।

यह पुस्तिका आचार्य भिक्षु श्री युत्तधम्मो जी के अनंत करुणा भरी विचार धारा का परिचय कराती है। उनके स्नेह भरे उदार चित्त से इस विधि को बताने का माध्यम बहुत ही सरल, सुव्यवस्थित और मंगलकारी प्रतीत होता है। हमें इस साधना विधि का अभ्यास कर उज्ज्वल समाज का निर्माण करना चाहिए।

इस पुस्तिका का अनुवाद करते समय हमारा यह प्रयास रहा है कि हिन्दी भाषी लोगों तक आचार्य भिक्षु श्री युत्तधम्मो जी के ही शब्द प्रस्तुत करें। यदि इस कार्य में हमसें कोई भी त्रुटि रह गई हो तो क्षमा चाहते हैं।

हमें विश्वास है कि सभी पाठक इस पुस्तिका का स्वागत करेंगे और इस साधना विधि को करके अपना मंगल साध लेंगे।

अनुवादक
अंजनाकुमारी एवं निहारिका

HOW TO MEDITATE

इस आतंकवादी युग में चारों ओर हाहाकार मचा हुआ है। भौतिकवाद के पंजे ने मानव जाति को जकड़ लिया है। इस घुटन और भयभीत वातावरण में मानव मन 'सुख–शान्ति' के लिये छट पटा गया है। ऐसे भय के अन्धकार को दूर करने का प्रयास भिक्षु श्री युत्तधम्मो ने अपनी पुस्तक "HOW TO MEDITATE" (कैसे ध्यान लगाऐं) रूपी लौ जलाकर कर लिया है।

अंग्रेजी में लिखी गई इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद अन्जनाकुमारी व निहारिका ने किया है। विभिन्न भाषाओं में अनुवाद की वजह है कि ''सुख और शान्ति'' प्राप्त करने का निर्मल मार्ग जन मानस तक पहुँचे तथा अधिकाधिक जन इस सुखद मार्ग पर अग्रसर हों।

मैं आभारी हूँ भिक्षु श्री युत्तधम्मो की जिन्होंने कोसों दूर होते हुए भी मुझ पर विश्वास किया और मुझे सम्पादक के योग्य समझा।

भिक्षु श्री युत्तधम्मो ने अपने चिन्तन–मनन से किशोरावस्था में ही सन्मार्ग प्राप्त किया है। कृश काय भिक्षु के ललाट और आनन पर तपस्वी का तेज विद्यमान है। सरल और निर्मल भाव से आप शान्ति व आनन्द रूपी पुष्पों की महक से विश्व प्रांगण को सुगन्धमय बना देना चाहते हैं। भिक्षु के समस्त शुभचिन्तकों की हार्दिक शुभकामनाएँ हैं कि वह अपने पथ पर निरन्तर अग्रसर हों और ऐसे सत्कर्म में सफलता उनके चरण पखारें।

धन्यवाद।

डॉ. कुक्कू शर्मा

विषय पृष्ठ

	परिचय	06
1.	अध्याय एक: ध्यान क्या है?	07–14
2.	अध्याय दो: बैठ कर ध्यान कैसे लगाएं।	15–19
3.	अध्याय तीन: चल कर ध्यान कैसे लगाएं।	20–23
4.	अध्याय चार: मूल सिद्धांत।	24–29
5.	अध्याय पांच: जागरूकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम।	30–33
6.	अध्याय छठा: दैनिक जीवन में ध्यान साधना।	34–39
	परिशिष्ट: चित्रावली	40–44

परिचय

यह पुस्तिका मेरे द्वारा "youtube" पर प्रस्तुत किए गए छः धारावाहिक "HOW TO MEDITATE" (http://www.youtube.com/ yuttadhammo) वीडियो का लिखित रूप है। वस्तुतः इस वीडियो का निर्माण "Los Angeles Federal Detention Centre" में प्रयोग के उद्देश्य से किया गया था। लेकिन वहां ध्यान विधि का प्रचार वीडियो द्वारा करना असंभव हो गया है। तब से मेरा अपना यह मुख्य उद्देश्य, इस ध्यान साधना विधि को उन नये साधकों तक पहुँचना है, जो ध्यान विधि सीखना चाहते हैं। जहां वीडियो तस्वीर दृष्टि से ज्ञान प्राप्त करने में लाभदायक है, वहीं यह पुस्तिका ध्यान की अत्यन्त आधुनिक विधि को विस्तार से प्रस्तुत करती है, जो आपको विस्तार से वीडियो पर नहीं मिलेगी।

प्रत्येक अध्याय को ठीक उसी प्रकार क्रम से प्रस्तुत किया गया है, जिस क्रम में किसी नये साधक को साधना विधि को सीखना चाहिए या फिर आप यह भी कह सकते हैं जिस क्रम में मैं नये साधक को साधना सीखते हुए देखना चाहता हूं। शायद इस बात से आश्चर्य हो सकता है कि अध्याय दो, तीन और पाँच जिस क्रम से इस पुस्तिका में प्रस्तुत किए गए हैं, वह क्रम से बिल्कुल उल्टा है, जिस क्रम से साधारणतः ध्यान विधि का अभ्यास किया जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि नया साधक बैठकर ध्यान विधि का अभ्यास सरलता से कर सकता है। जैसे ही साधक ध्यान के मुख्य उद्देश्य को समझ लेता है और उसका अभ्यास दैनिक जीवन में करने लगता है तब यह आशा की जाती है कि साधक ध्यान का अभ्यास निरंतर किसी भी कार्य को करते हुए चलते हुए, लेटे हुए, बैठे हुए, भोजन करते हुए इत्यादि सदैव करता रहे।

मेरा उद्देश्य ध्यान साधना विधि का प्रचार करना है जिससे ज्यादा से ज्यादा लोग ध्यान विधि सीख कर लाभ प्राप्त कर सकें। जिस समाज में हम जीवन व्यतीत कर रहे हैं, यदि हम वहाँ शांति और सुख अनुभव करना चाहते हैं तो यह अत्यंत आवश्यक है कि हम नम्रता और स्नेह से समाज में आचरण करें और ऐसे आचरण को जीवन में लाने का अभ्यास करें। ध्यान साधना विधि हमें इसी आचरण का अभ्यास करना सिखाती है।

मैं उन सब लोगों का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मेरे इस उद्देश्य को पूरा करने में अपना सहयोग दिया, मेरे माता, पिता, मेरे भूतकाल के आचार्य, मेरे वर्तमान आचार्य श्री अजान तोंग सिरिंमंगलों, और उन सब साधकों का मैं धन्यवाद करता हूं जिन्होंने मेरे द्वारा सिखाई गई साधना विधि का अनुसरण किया।

सबका मंगल हो! सबका कल्याण हो!!

युत्तधम्मो

अध्याय–एक
ध्यान क्या है?

इस पुस्तिका का मुख्य उद्देश्य ध्यान साधना विधि को उन सब लोगों तक पहुँचना है जिन्हें ध्यान साधना विधि का बहुत कम अथवा बिल्कुल भी ज्ञान नहीं है। यह पुस्तिका उन लोगों के लिऐ भी लाभदायक है, जिन्होंने बहुत सी ध्यान प्रणालियाँ सीखीं है और नई ध्यान साधना विधि प्रणाली भी सीखना चाहते हैं। पहले अध्याय में मैं ''ध्यान'' जो कि अंग्रेजी ''मेडिटेशन'' है, उसका विस्तार से वर्णन करूँगा, ध्यान कैसे करना चाहिए, उसका भी विस्तार से वर्णन करूँगा।

सबसे पहले यह समझा लें कि हमारे समाज में बहुत सी ध्यान प्रणालियाँ प्रचलित हैं और ध्यान की परिभाषा भी भिन्न–भिन्न हैं। कुछ लोगों के लिए ध्यान कुछ समय के लिए शांति प्राप्त करना है जिससे वह वास्तविक वर्तमान स्थिति से छुटकारा पा सकें। कुछ लोग ध्यान को अद्भुत अनुभव समझते हैं, तो कुछ ध्यान को रहस्यमयी या जादुई समझते हैं।

इस पुस्तिका में मेडिटेशन यानि ''ध्यान'' को उसके शब्द के अर्थ के रूप में परिभाषित करूँगा। मेडिटेशन अंग्रेजी शब्द ''मेडिसिन'' से लिया गया है। यह मेडिसिन (दवा) शब्द हमें मेडिटेशन (ध्यान) को गहराई से समझने में सहायक होगा। मेडिसिन (दवा) का संबंध हमारे शरीर के रोग को समाप्त कर हमें स्वस्थ करने से है उसी प्रकार मेडिटेशन (ध्यान) का संबंध भी हमारे मन में विकारों को समाप्त कर उसे स्वस्थ करने से है।

इसके अतिरिक्त हमें यह भी समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार मेडिसिन (दवा), ड्रग (नशा करने का पदार्थ) से भिन्न है। ड्रग (नशा करने का पदार्थ), मेडिसिन से इस कारण से भिन्न है क्योंकि ड्रग हमें कुछ समय के लिए ही सुख और शांति अनुभव करवाती है। नशे का असर उतरते ही हमें वास्तविक दुःख का अनुभव होने लगता है और ड्रग हमारे स्वास्थ्य को भी ठीक नहीं करता है, बल्कि हमारा स्वास्थ्य पहले से भी अधिक बिगड़ जाता है। उसके विपरीत मेडिसिन हमारे स्वास्थ्य को रोग रहित कर उसे लंबे समय तक सुख प्रदान करता है।

इसी प्रकार मेडिटेशन (ध्यान) का उद्देश्य भी हमारे मन के विकारों (चिंता, डर, तनाव, क्रोध, वासना, ईष्र्या, लोभ, राग और द्वेष इत्यादि) को जड़ से उखाड़ फेंकना है और उसे स्थाई और वास्तविक सुख एवं शांति का अनुभव करवाना है, न कि अस्थाई रूप से मन को शांत करना है। जब भी आप इस पुस्तिका के अनुसार ध्यान साधना का अभ्यास आरंभ करें, कृपया आप यह समझ लें कि जिस प्रकार दवा लेते ही हमारा रोग दूर नहीं होता और हमें दर्द से छुटकारा नहीं मिलता है ठीक उसी प्रकार ध्यान साधना का अभ्यास आरम्भ करते ही हमारे मन के रोग दूर नहीं होते हैं। जिस प्रकार उपचार के समय हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है परंतु जैसे–जैसे उपचार होता जाता है हमें रोग से छुटकारा मिलने लगता है और शरीर स्वस्थ और सुख अनुभव करने लगता है, ठीक उसी प्रकार जब हम ध्यान साधना का अभ्यास करते हैं तो हमें ध्यान में बैठते ही सुख की अनुभूति की आशा नहीं करनी चाहिए। हमें यह समझना चाहिए कि शारीरिक रोग जो कुछ समय से ही हमारे शरीर में हैं वो भी समय लेकर ही दूर होते हैं जबकि हमारे मन के विचार तो कई अनेक जन्मों से हमारे भीतर घर कर बैठे हैं, यह आसानी से नहीं निकलते। बहुत संघर्ष से, बहुत प्रयत्नों से मन के विकार बाहर निकलते हैं और यह तभी संभव है जब हम ध्यान साधना विधि को बहुत अच्छी तरह समझ कर उसका निरंतर अभ्यास करते हैं।

जैसे–जैसे हम निरंतर ध्यान करते हुए मन को एकाग्र रखते हुए गहरे विकारों की ओर बढ़ते हैं और उनको यथाभूत प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं तब तो हमें बिल्कुल भी सुख और शांति अनुभव नहीं होती है। क्योंकि हम विकार का प्रत्यक्ष और स्वाभाविक रूप अनुभव कर उसका प्रत्यक्ष सामना करते हैं। इसलिए यह अनुभूति बहुत कष्टदायक हो सकती है । उदाहरण के लिए जब हम क्रोध का प्रत्यक्ष सामना करते हैं या फिर पीड़ा का प्रत्यक्ष रूप से सामना करते हैं तब हमें सुख की अनुभूति नहीं होती बल्कि बहुत तनाव अनुभव होता है। यह स्थिति कष्टदायक इस कारण से भी है क्योंकि अब तक के जीवन काल में हमने इन्हें केवल बढ़ाने का कार्य ही किया है और अब हम उसके विपरीत कार्य कर रहे हैं। मन को उसकी विपरीत दिशा में कार्य कराने का अभ्यास कठिन और कष्टदायक होता है। लेकिन समझदार साधक समझ लेता है कि यह स्थिति उसके लिए बहुत लाभदायक है, क्योंकि वह अपने मन के गहरे जन्म–जन्मान्तर तक भव–भ्रमण करवाने वाले विकार बाहर निकाल फेंकता है और वास्तविक शांति अनुभव कर अपना कल्याण करता है।

इसी कारण से मैं इस बात पर अधिक प्रकाश डाल रहा हूं कि ध्यान साधना का उद्देश्य हमें अस्थाई रूप से सुख और शांति का अनुभव करवाना नहीं है बल्कि मन को विकार रहित कर उसे वास्तविक और स्थाई शान्ति का अनुभव करवाना है। ध्यान साधना का अभ्यास हमारे अंदर स्थाई परिवर्तन लाता है। हम जीवन की कठिनाइयों का सामना बहुत समझदारी से करने लगते हैं और हम में समाज को समझने की नई सोच पैदा होती है। हमारा मन करुणा और मैत्री से भर जाता है। जब हम जीवन के प्रत्येक अनुभव (वस्तु, स्थिति, रूप के प्रति हमारी प्रतिक्रिया) को राग, द्वेष (अच्छा और बुरा), मैं और मेरा के तराजू में तोलते हैं, तब हम जीवन में दुःख, चिंता, तनाव जैसे मन के विकारों को जन्म देते हैं। परंतु जब हम प्रत्येक अनुभव को उसके स्वाभाविक रूप में देखने लगते हैं तब हम उस वस्तुस्थिति या रूप का मूल्यांकन करने की जगह उसे सही, वर्तमान स्वरूप यानि जो घट रहा है, केवल उसे ही जाना जा रहा है, हम अपनी तरफ से कुछ प्रतिक्रिया नहीं करते हैं। केवल तब हम मन के विकारों को बढ़ावा नहीं देते हैं। मन के विकार शांत होने लगते हैं और हम भी शांति अनुभव करने लगते हैं।

''मंत्र उच्चारण'' मन को एकाग्र करने की प्राचीन विधि है। मंत्र का संबंध किसी एक शब्द या किसी एक पंक्ति से है जिसका मन–ही–मन बार–बार उच्चारण किया जाता है। मूलतः मंत्र का प्रयोग पूर्वी प्रदेशों में अदृश्य दिव्य शक्ति को खुश करने या उसे पाने हेतु किया जाता है। परंतु हम मंत्र का प्रयोग केवल वास्तविकता से जुड़े रहने के लिए करेंगे। इसलिए इस ध्यान साधना विधि में मंत्र का संबंध वास्तविक स्वाभाविक स्थिति, वस्तु, रूप से है। हमारे द्वारा प्रयोग किए जाने वाले मंत्र का उद्देश्य मन को एकाग्र कर उसे वर्तमान में रखने से है, मन को सचेत रखने से है। हम मंत्र का प्रयोग वस्तु, स्थिति, रूप या फिर संकल्प–विकल्प के प्रत्यक्ष स्वाभाविक स्वरूप को जानने के लिए करते हैं। स्वाभाविक रूप से हमारा मन जीवन में होने वाले प्रत्येक अनुभव को अच्छा, बुरा, मैं, मेरा के रूप में देखता है और हम उसी के अनुसार आचरण भी करते हैं, जो कि बंधन बांधने का कार्य करता है, हमें दुःख देने का कार्य करता है। इसी कारण से हम मंत्र का प्रयोग कर वास्तविकता से जुड़ने का अभ्यास करेंगे, उसका वास्तविक स्वतंत्र स्वभाव जानने का अभ्यास करेंगे। ऐसा करने से हम, मन को किसी परिस्थिति में मूल्यांकन करने से रोकते हैं। उदाहरण के लिए जब हम किसी रूप, वस्तु या स्थिति को मैं, मेरा, अच्छा और बुरा समझते हैं तब हम उसका वास्तविक स्वभाव नहीं जान पाते हैं और इसी अंधकार में संसार चक्र से बंधे रहते हैं व दुःख भोगते रहते हैं।

मंत्र का प्रयोग इस प्रकार करना है, जब भी हमारा शरीर स्थिर अथवा गतिमान होता है हम केवल जागरूक रहकर उसे जानेंगे और उससे संबंधित एक शब्द मन में दोहराएंगे। उदाहरण के लिए जब चले रहे हैं, तो जागरूकता से यह भी जान रहे हैं कि चल रहा हूं और मन में कहेंगे ''चल रहा हूं'' इसी प्रकार, बैठा हूं, भोजन कर रहा हूं, लेटा हूं, पढ़ रहा हूं, सुन रहा हूं, देख रहा हूं, सोच रहा हूं इत्यादि। इसके अतिरिक्त यह भी जान रहे हैं कि कैसा अनुभव हो रहा है, जैसे कि अच्छा लग रहा है, बुरा लग रहा है, क्रोध आ रहा है, थकान है इत्यादि सभी प्रकार की अनुभूतियों को भी जागरूकता से जानते हुए मन–ही–मन दोहराएंगे ''क्रोध'' ''क्रोध'', ''अच्छा'' ''अच्छा'', ''बुरा'' ''बुरा'', ''थकान'' ''थकान'' इत्यादि। हम केवल उसी शब्द का चुनाव करेंगे जो उस समय हो रही घटना को स्पष्ट रूप से दर्शाता है या उससे संबंधित है। इस प्रकार अभ्यास करने से हम अधिक समय तक मन को वर्तमान में रखते हुए, उसे मूल्यांकन करने से रोकते हैं। यहां साधक को यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि हम ऐसा करके अपनी भावनाओं का दमन नहीं कर रहे हें बल्कि उसका वास्तविक स्वरूप जान रहे हैं और हर समय राग, द्वेष, मैं, मेरा करने वाले मन को शांत करने का कार्य कर रहे हैं। (यदि आप अंग्रेजी बोलना जानते हैं तब आप अंग्रेजी भाषा के शब्द भी प्रयोग कर सकते हैं जैसे eating, watching, listening,
thinking, feeling, pain, angry, happy इत्यादि)।

साधक को यह भी स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि किसी भी शब्द का कोई भी महत्व नहीं है। किसी भी प्रकार का शब्द केवल इस रूप में महत्व रखता है कि वह वर्तमान में हो रही घटना को प्रत्यक्ष रूप से दर्शाता है। मंत्र का प्रयोग मुँह द्वारा बोल–बोल कर नहीं करना है बल्कि मौन रहते हुए, मन में दोहराना है।

वास्तविकता और वर्तमान से जुड़े रहने की इस कला को और भी स्पष्ट और साधारण करने के उद्देश्य से परंपरागत रूप से ही इसे चारों भागों में बांटा गया है।1 यह चार भाग हमारी ध्यान साधना विधि का मूलभूत आधार है और वह ध्यान साधना विधि को सुव्यवस्थित करते हैं। किसी भी प्रकार का अनुभव इन चार भागों में से किसी एक भाग से संबंधित होगा। प्रत्येक भाग हमारे द्वारा प्रयोग किए जा रहे शब्द को तुरंत पहचानने में सहायक है। यह परम्परा रही है कि प्रत्येक साधक साधना का अभ्यास आरंभ करने से पहले इन्हें अच्छी तरह समझ कर याद कर ले।

1. कायानुपस्ना (रूप, काया, शरीर) – रूप स्कंध (शरीर) और उसके गतिमान अंग।
2. वेदानुपस्ना (अनुभूति) – काया (शरीर) पर होने वाली संवेदनायें।
3. चित्तनुपस्ना (मन, चित्त) – चित्त और चित्त व्रित्तियां अथवा मन में चलने वाली व्रित्तियां।
4. धम्मानुपस्ना (चेत्सिक ज्ञान) – धम्मा में मन, काया और छः इन्द्रियों से संबंधित बहुत से भाग आते हैं। धम्मा के अभ्यास से हम जान पाते हैं कि किस प्रकार हम इन छः इंद्रियों द्वारा चल रहे प्रपंच में जकड़े हुए हैं और अंधकार में अपना जीवन व्यतीत कर रहे हैं। धम्मा ही हमें सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन करवाता है और हमें प्रज्ञा में स्थापित करता है अर्थात् प्रत्यक्ष ज्ञान (अनुभूति वाले सत्य) में स्थापित करता है।2

यह चार भाग हमारी ध्यान साधना विधि का मूलभूत आधार हैं। मानस के इन्हीं चार भागों का प्रयोग कर वर्तमान में मन को सचेत रखने का अभ्यास किया जाता है।

1. **पहला भाग–कायानुपस्ना** (रूप, काया, शरीर)
शरीर के सभी अंग और उनके द्वारा होने वाली अनुभूति ही कायानुपस्ना है। जैसे कि बाजू का हिलना, चलना, पढ़ना, भोजन करना, देखना इत्यादि। इस भाग का अभ्यास हम निरंत करने का प्रयत्न करते हैं। हम कोई भी कार्य कर रहे हों हम मन को जागरूक रखते हुए केवल उस कार्य के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं। उदाहरण के लिए जब हम चल रहे हैं तो यह भी जान रहे हैं कि चल रहा हूं और मौन रहते हुए मन में ही दोहराएंगे ''चल रहा हूं'' इसी प्रकार बैठा हूं, भोजन कर रहा हूं, लेटा हूं, पढ़ रहा हूं इत्यादि।

हमारा मुख्य उद्देश्य मन को वर्तमान में केन्द्रित करना है। हमारे द्वारा हो रहे प्रत्येक कार्य को मन द्वारा जाना जा रहा है। साधारणतः तो हम कार्य कुछ और कर रहे होते हैं और मन कहीं और भटक रहा होता हैं। परन्तु जब हम इस प्रकार निरंतर मन को वर्तमान में रखने का अभ्यास करते हैं तब मन का स्वभाव अपने आप बदलने लगता है और वह वर्तमान में प्रत्येक कार्य को जागरूक रहकर करने लगता है।

2. **दूसरा भाग–वेदानुपस्ना** (अनुभूति, संवेदना)
इस भाग का अभ्यास हम प्रत्येक अनुभूति और उसके वास्तविक स्वभाव को जानने के लिए करते हैं। जैसे कि ध्यान साधना करते समय जब हम अपने अंदर क्रोध का अनुभव करते हैं तब हम और अधिक क्रोधित होने की बजाय क्रोध को उसके वास्तविक प्रत्यक्ष वर्तमान स्वरूप में देखेंगे। इसके लिए हम मंत्र का प्रयोग करेंगे और मौन रहते हुए मन ही मन कहेंगे ''क्रोध'', ''क्रोध'', ''क्रोध''। इसी प्रकार वर्तमान समय में अनुभव हो रही अन्य अनुभूतियों का भी अभ्यास किया जाता है। जैसे कि ठंडा लगना, गर्म लगना, पसीना आना, खुजली होना, गुदगुदी होना, आनंद आना, भोजन के रस की अनुभूति इत्यादि।
पीड़ा का होना और हमारे शरीर और मन द्वारा उसका अनुभव करना। ध्यान साधक केवल पीड़ा है ऐसा जान कर, मन–ही–मन बार–बार यह मंत्र दोहराएंगे ''पीड़ा'', ''पीड़ा...पीड़ा''। ऐसा करके हम मन द्वारा होने वाली प्रतिक्रिया को रोकते हैं। साधारणतः तो पहले जब भी पीड़ा का अनुभव होता था तब मन, द्वेष और तनाव से भर उठता था और यह तनाव एक और दुःख देने वाले विकार ''क्रोध'' को जन्म देता था। हम बहुत दुःख अनुभव करने लगते थे। पर अब जब कोई प्रतिक्रिया नहीं करता केवल पीड़ा को पीड़ा के रूप में देखता है। पीड़ा को अच्छे और बुरे भाव से नहीं देखता, मन यह जानने लगता है कि वास्तव में पीड़ा और संवेदना दोनों अलग–अलग हैं, पीड़ा तभी तक पीड़ा है जब तक मन उसके प्रति भोग का भाव रख उसे भोगता है, परन्तु जैसे ही प्रतिक्रिया करना बंद कर देता है, उसे उसके यथाभुत रूप में देखने लगता है तब जानता है पीड़ा, पीड़ा ना होकर केवल शरीर पर होने वाली संवेदना के अलावा और कुछ नहीं है।3 तब हम पीड़ा के 'पीड़ा हो रही है' भाव को समाप्त कर उसके वास्तविक स्वरूप को देखने लगते हैं। मन को यह भी स्पष्ट हो जाता है कि शरीर पर हो रही कोई संवेदना पर मेरा कोई आधिपत्य नहीं है, क्योंकि मेरे चाहने पर यह कम, अधिक या समाप्त नहीं होती है। और जब हम देखते हैं कि पीड़ा भी समय रहते समाप्त हो ही जाती है, सदैव नहीं रहती, मन उसके अनित्य स्वभाव को जानने, समझने लगता है। मैं, मेरे का भाव भी समाप्त होने लगता है मन भोगता भाव समाप्त कर शांत रहने लगता है।

इसी प्रकार जब हम सुख और आनंद अनुभव करते हैं तब हम उसके अनित्य स्वभाव को समझते हुए केवल उसके प्रत्यक्ष वास्तविक स्वभाव को जानेंगे न कि उसकी अनुभूति को अच्छा जानकर उसको भोगने लगेंगे और मन–ही–मन दोहराएंगे ''प्रसन्न'', ''प्रसन्न'', ''प्रसन्न''। जिस प्रकार हमने समझा कि पीड़ा केवल शरीर पर होने वाली संवेदना है उसी प्रकार वास्तव में सुख और संवेदना दोनों अलग–अलग हैं, सुख भी तभी तक सुख है जब तक मन उसके प्रति भोगता भाव रख उसे भोगता है परन्तु जैसे ही प्रतिक्रिया करना बंद कर, उसे उसके यथाभूत रूप में देखने लगता है तब जानता है सुख, सुख ना होकर केवल शरीर पर होने वाली संवेदना के अलावा और कुछ नहीं है और यह सुखद अनुभूति भी अंत में दुःख में ही परिवर्तित हो जाएगी इसलिए हम मन को शांत रख कर कोई प्रतिक्रिया न करते हुए, केवल उसका यथाभूत दर्शन करेंगे।

यहां हमें एक और बात बहुत स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का अभ्यास करके हम अपनी भावनाओं का दमन नहीं कर रहे हैं बल्कि उनके अनित्य स्वभाव को जानते हुए उनके वास्तविक स्वभाव को जान रहे हैं। अर्थात् सत्य

को जान रहे हैं। क्योंकि यह आनंद भी पीड़ा की ही भांति सदैव रहने वाला नहीं है। समय रहते यह भी समाप्त हो जाता है और इसकी समाप्ति का अनुभव भी पीड़ाजनक ही है। इसलिए हमें मन को प्रत्येक स्थिति में शांत रखना है और 'भोगता भाव' समाप्त करना है। क्योंकि 'भोगता भाव' मन में राग पैदा कर चाहिए–चाहिए करता हुआ हमें इस संसार में बांधने का कार्य करता है और हम इस अनित्य संसार में नित्य की भांति दुःख भोगते रहते हैं।
इसी प्रकार जब हम शान्ति अनुभव करते हैं, हम मंत्र का प्रयोग कर मन ही मन दोहराएंगे, ''शांत'', ''शांत'', ''शांत'' इस प्रकार हम शांति की अनुभूति से भी 'भोगता भाव' समाप्त कर उसके वास्तविक अनित्य स्वरूप को देखते हैं। इस प्रकार ध्यान साधना का अभ्यास करते हुए हम पाते हैं कि जितना–जितना 'भोगता भाव' समाप्त होता है उतनी ही वास्तविक शान्ति हम अनुभव करने लगते हैं।

3. **तीसरा भाग– चित्तनुपस्ना** (मन, चित)
साधक को मन में चल रहे संकल्प–विकल्प अथवा विचारों को भी उनके वास्तविक यथाभूत स्वभाव में देखना है और मन में कोई भी विचार आये तब मन द्वारा कोई भी प्रतिक्रिया ना करते हुए उसे उसके प्रत्यक्ष रूप में देखना है और मन ही मन यह मंत्र उच्चारण करना है ''विचार'', ''विचार'', ''विचार'', हमें अपने विचारों से भी भोगता भाव समाप्त करना है क्योंकि यदि विचार भूतकाल से जुड़ा है तब उसके केवल दो ही वास्तविक स्वरूप होंगे या तो विचार दुःखद होगा या फिर सुखद होगा। दुःखद विचार मन में द्वेष, पीड़ा, बेचैनी, तनाव अशांति, क्रोध और दुःख उत्पन्न करेगें और हम फिर इन विकारों को भोगते हुए संसार चक्र से बंधे रहेंगे और यदि विचार सुखद होगा तब भी मन राग पैदा करेगा और ''और चाहिये''–''और चाहिये'' करता हुआ इस संसार से बंधा रहेगा। क्योंकि यह संसार परिवर्तनशील है, इसका स्वभाव परिवर्तित होते रहना है। इसलिए जो हमें चाहिए वह भी बदलता रहता है और हम कभी भी सुख अनुभव नहीं कर पाते हैं। क्योंकि जिस वस्तु, स्थिति और रूप को हम भोगता भाव से भोग रहे थे वे अब नहीं है और हम उन्हें चाहते है और वैसा होना संभव नहीं होता और हो भी जाए तो अंत में समाप्त हो कर या परिवर्तित हो कर हमारे दुःख का ही कारण बनने वाला है। इसलिए सुखद विचार भी दुःख में ही परिवर्तित हो जाते हैं। इसलिए हमें प्रत्येक विचार को भी केवल उसके वास्वविक स्वभाव से देखना है। इसी प्रकार यदि विचार भविष्य से जुड़ा है तब भी वह बंधन बाँधने का ही कार्य करता है क्योंकि विचारों में भी ऐसा हो जाए तब अच्छा हो राग पैदा कर बेचैन रहता है और या फिर ऐसा ना हो जाए सोच कर भय पैदा कर दुःख का अनुभव करता है। इसीलिए हम विचारों के वास्तविक स्वरूप को जानते हैं, द्वेष अथवा राग के भाव से मुक्त हो उनके स्वतंत्र रूप को देखते हैं और बंधन से मुक्त होते हुए शांति का अनुभव करते हैं।

4. **धम्मानुपस्ना** (चित्सिक ज्ञान)
यह भाग ध्यान साधना विधि का महत्वपूर्ण भाग है। धम्मा में काया, चित और छः इन्द्रियों से जुड़े बहुत से भाग आते हैं। इनमें से कुछ भाग मानस के पहले तीन भागों में आते हैं। लेकिन यह आवश्यक है कि हम इन्हें इनके अलग–अलग स्वतन्त्र रूप में जानें। धम्मा के पहले भाग में पाँच बाधक, पाँच विकार आते हैं जो हमारे दुःखों का मुख्य कारण है। यही हमारे ज्ञान प्राप्ति में बाधक भी है और यही पाँच विकार हमें संसार चक्र से बांधे भी रखते हैं। यह विकार हैं: राग, द्वेष, आलस्य, व्याकुलता और अविश्वास। हमारे हित में है कि हम इन्हें अच्छी तरह समझ लें और जान लें कि किस प्रकार यह हमें भ्रमित रख कर हमें अंधकार की ओर ले जाते हैं। इन पाँच विकारों से मुक्ति पाना ही हमारी साधना का मुख्य लक्ष्य है।

रागः हमारी छः इन्द्रियों नाक, कान, जीभ, काया, आँख और मन से जब कोई गंध, शब्द, रस, स्पर्श या विचार आकर टकराता है तब शरीर प्रतिक्रिया कर संवेदना उत्पन्न करता है और हम इस मन के विकार राग के कारण इन संवेदनाओं को सुखद जानकर भोगने लगते हैं, और चूंकि राग ऐसा रोग है जो हमें कभी संतुष्ट नहीं होने देता है, और हम सदैव ''और चाहिए''–''और चाहिए'' करते तनाव, चिंता और दुःख से भरा जीवन व्यतीत करते हैं इसलिए हमें इस राग से छुटकारा पाने का सदैव ही अभ्यास करते रहना चाहिए। राग हमें इस परिवर्तनशील भाव के प्रति आसक्त रखता है और जब भी वस्तु, स्थिति या रूप में परिवर्तिन आता है हम दुःख भोगते हैं। इसी कारण से यह हमारी साधना का मुख्य लक्ष्य है कि हम इस विकार को समाप्त कर मन को शांत करें। इसलिए हम किसी भी अनुभूति को अच्छा जानकर भोगेंगे नहीं बल्कि उसके वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते हुए, मन ही मन दोहराएंगे ''चाहिए'', ''चाहिए'' या ''सुखद'', ''सुखद''।

द्वेषः इसी प्रकार हम जब इन छः इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न संवेदनाओं को दुःखद जान कर, उनके प्रति भोगता भाव रख कर दुःख भोगने लगते हैं तब हम इन संवेदनाओं के प्रति द्वेष उत्पन्न करते हैं। द्वेष ही दुःख है। क्योंकि द्वेष हमारे अन्दर, भय, चिंता, तनाव, क्रोध जैसे विकारों को जन्म देता है और यदि हम द्वेष से छुटकारा पा लें तब ये सभी विकार भी समाप्त हो

जाते हैं। इसलिए हम जब भी अपने अंदर भय, क्रोध, चिंता, तनाव देखेंगे हम इन विकारों के अनित्य वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते ही मन–ही–मन दोहराएंगे ''भय'', ''भय'', ''चिंता'', ''चिंता'', ''क्रोध'', ''क्रोध''।

आलस: हमारी साधना का बहुत बड़ा बाधक है। यह हमें साधना करने नहीं देता है क्योंकि हम इसे निकालने का कार्य कर रहे हैं। इसलिए मन बाधक को जब भी हम अपने अंदर पायेंगे हम इसके अनित्य वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते हुए मन ही मन दोहराएंगे ''आलस',' ''आलस'', ''थकान'', ''थकान''। इस प्रकार अभ्यास द्वारा हम पाएंगे कि हम स्वाभाविक रूप से फिर से अपने अंदर ऊर्जा अर्जित कर रहे हैं और आलस समाप्त हो रहा है।

व्याकुलताः इसी प्रकार जब भी हम ध्यान साधना करने लगते हैं, हमारा मन बेचैन होने लगता है क्योंकि अब तक के जीवनकाल में मन, काया और इन छः इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न संवेदनाओं के प्रति आसक्त रहा है, प्रतिक्रिया करता रहा है। लेकिन अब हम उसके स्वभाव को बदल रहे हैं, उसे प्रतिक्रिया करने से रोक रहे हैं इसलिए हमें बहुत बेचैनी होने लगती है, व्याकुल होने लगते हैं, अपनी इस अवस्था को भी यथाभूत देखते हुए उसके प्रति द्वेष ना करते हुए, इस बेचैनी की अवस्था को भी समाप्त करने का अभ्यास करेंगे। हम उसका प्रत्यक्ष रूप जानते हुए मन ही मन दोहराएंगे ''मन भटक गया'' ''मन भटक गया'', ''बेचैनी'', ''बेचैनी'' या ''व्याकुल'', ''व्याकुल''। इस प्रकार अभ्यास द्वारा हम पाएंगे कि हम फिर से मन को एकाग्र कर, वर्तमान में घट रही घटना को यथाभुत देखने लगते हैं और मन शांत हो गया, व्याकुलता नहीं रही।

अविश्वास: हमारी साधना का बहुत बड़ा बाधक है। साधना करते समय बार–बार मन में शंका के विचार उत्पन्न होंगे और हमें साधना का अभ्यास करने नहीं देगें। इसलिए इन शंका के विचारों को भी हम यथाभूत देखते हुए कोई प्रतिक्रिया नहीं करेंगे, और मन–ही–मन दोहराएंगे ''शक़'', ''शक़'', ''शक़''। इस प्रकार अभ्यास द्वारा हम पाएंगे कि हमारा मन फिर से एकाग्र हो गया है और शंका के बादल भी हट गए हैं। यदि शंका साधना के प्रति है तब साधना आचार्य से संपर्क कर अपनी शंका का समाधान करेंगे।

इन पाँच विकारों को अच्छी तरह समझ कर उनके प्रति जागरूकता रखना ही हमारी ध्यान साधन का मुख्य लक्ष्य है और इनके प्रति किस प्रकार जागरूकता बनाकर हमें इन्हें कैसे समाप्त करना है यही हम अगले सभी अध्यायों में सीखेंगे। इसी कारण से इस साधना विधि का सैद्धांतिक पक्ष समझना अत्यन्त आवश्यक है। वर्तमान समय में मन को एकाग्र करना और किसी भी अनुभूति के प्रति प्रतिक्रिया न करते हुए उसके अनित्य वास्तविक स्वभव को यथाभूत समझना ही हमारी साधना का पहला कदम है।

टिप्पणी:

1. मानस के इन चार भागों को (बोध) "त्रिपितक" के ''महासतिपठानसुत'' में ''चार स्मृति प्रस्थान'' कहा गया है और महासतिपठानसुत में इनका विस्तार से वर्णन किया गया है। क्योंकि पुस्तिका का उद्देश्य साधना विधि का परिचय नये साधकों से कराना है इसलिये इस पुस्तिका में इनका वर्णन केवल परिचय के रूप में किया गया है।

2. आधुनिक काल में ''धम्मा'' से संबंधित बहुत सी ध्यान प्रणालियाँ प्रचलित हैं। इसलिए मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि इस पुस्तिका में धम्मा से हमारा अभिप्राय केवल ''शिक्षा'' से है। लेकिन हमें शब्दों के जंजाल में ना उलझते हुए ध्यान साधना के सैद्धांतिक पक्ष और व्यावहारिक पक्ष की ओर ध्यान देना चाहिए। इसी कारण से मैंने चौथे भाग ''धम्मा'' के वर्णन को पाँच विकारों तक ही सीमित रखा है।

3. ''वेदना'' शब्द को प्राचीन काल में संवेदना कहा जाता था। आज के समय में वेदना को दुःख कहा जाता है परंतु हमारा अभिप्राय वेदना से केवल शरीर और मन पर होने वाली संवेदना से है, दुःख से नहीं। संवेदनाओं की अनुभूति मन और शरीर दोनों द्वारा की जाती है।

अध्याय–दो
बैठ कर ध्यान साधना का अभ्यास

अध्याय दो में मैं वर्णन करूंगा कि किस प्रकार ध्यान साधना के सिद्धांतों का औपचारिक तौर से बैठ कर, व्यावहारिक रूप से अभ्यास किया जाता है। बैठ कर ध्यान लगाना सरल है। आप इस ध्यान विधि का जमीन पर पालथी मारकर, कुर्सी पर या फिर किसी और आरामदेह आसन पर बैठ कर अभ्यास कर सकते हैं। जो लोग किसी कारणवश बिल्कुल भी बैठ नहीं सकते, वह इस विधि का लेट कर भी अभ्यास कर सकते हैं।

औपचारिक तौर से बैठ कर ध्यान करने से हमें यह लाभ होगा कि हमारा ध्यान हमारे आस–पास के वातावरण और वस्तुओं पर नहीं पड़ेगा और हम ध्यान विधि का अभ्यास कर, काया के अंगों पर मन को एकाग्र कर सकेंगे। जब हम स्थिर बैठते हैं, हमारा शरीर शांत होता है और हम श्वास के आवागमन को अनुभव कर पेट पर उभार अनुभव करते हैं, और श्वास बाहर जाता है तो हम पेट का घटना अनुभव करते हैं। परंपरागत तौर से इस तरह श्वास को अनुभव करने को ''आना–पाना'' के नाम से जाना जाता है। यदि आप श्वास को अनुभव करने में कठिनाई अनुभव कर रहे हों तब आप अपने पेट पर हाथ रख कर अनुभव करने का प्रयास करें, यह तब तक करें जब तक आप श्वास अनुभव करने लगें।
यदि आप हाथ रख कर भी श्वास का अनुभव नहीं कर पा रहे हों तब आप लेट कर प्रयास कर सकते हैं। आप पीठ के बल सीधे लेट जाएं और अनुभव करने का प्रयास करें जब तक कि आप को श्वास का अनुभव नहीं होता है। आम तौर पर बैठ कर पेट पर श्वास द्वारा हो रहे उभार और उसके घटाव की अनुभूति, हम तनाव और चिंता के कारण नहीं कर पा रहे होते हैं। यदि आप शांति और निरंतरता से ध्यान करते हैं तो आप देखेंगे कि आपका मन शान्त हो रहा है और आप बैठ कर भी उसी प्रकार श्वास द्वारा हो रहे पेट पर उभार और उसके घटाव की अनुभूति कर पा रहे हैं, जिस प्रकार आप लेटकर कर रहे होते हैं।

सबसे अधिक स्मरण रखने की और महत्वपूर्ण बात यह है कि हम इस प्रकार ध्यान साधना का अभ्यास कर कोई श्वास की कसरत या व्यायाम नहीं कर रहे हैं, बल्कि स्वाभाविक श्वास के आवागमन को केवल साक्षी भाव से देख रहे हैं। याद रहे हम किसी भी श्वास को तीव्र अथवा धीरे (नियंत्रण) करने का प्रयास नहीं करेंगे। आरम्भ में श्वास धीमा या तकलीफ़देह प्रतीत हो सकता है, परंतु जैसे ही मन शांत हो कर श्वास को नियंत्रित करना बंद कर देता है, आप बहुत ही आसानी से श्वास के

द्वारा हो रहे पेट पर उभार और उसके घटाव की अनुभूति करने लगते हैं, जिसे श्वास के स्वाभाविक आवागमन को केवल साक्षी भाव से देखना सरल लगने लगता है।

मन को एकाग्र करने के लिए साधना विधि का आरम्भ आना–पाना (श्वास द्वारा हो रहे पेट पर उभार और उसके घटाव की अनुभूति) से किया जाता है। लेकिन जैसे–जैसे हमारा मन शांत होता है, वह सरलता से श्वास के स्वाभाविक आवागमन को केवल साक्षी भाव से देखने लगता है। हम आना–पाना का अभ्यास करना बंद कर शरीर पर हो रही अन्य अनुभूतियों को साक्षी भाव से देखेंगे, और जब कभी भी हमारा मन विचलित अथवा व्याकुल हो, हम पुनः आना–पान का अभ्यास कर, मन को शांत करने का प्रयास करेंगे।

औपचारिक तौर पर बैठ कर ध्यान करने की विधि निम्नलिखित हैः–
1. यदि सरल और संभव हो तो जमीन पर पालथी मारकर बैठ जायें, एक लात दूसरी लात के सामने हो, कोई भी लात एक दूसरे के ऊपर नहीं होनी चाहिए। लेकिन यदि यह आसन आपके लिए कठिन है, तब आप किसी भी अन्य सुविधाजनक आसन में बैठ सकते हैं।
2. एक हाथ को दूसरे हाथ पर रखेंगे और दोनों हथेलियों को गोद में रखेंगे।
3. संभव हो तो पीठ सीधी रखें, परंतु यह अनिवार्य नहीं है। आवश्यक केवल श्वास के स्वाभाविक आवागमन को साक्षी भाव से देखना है इसलिए आप किस प्रकार से बैठे हुए हैं इसका इतना महत्व नहीं है जितना कि आपका, श्वास के स्वाभाविक आवागमन को केवल साक्षी भाव से देखना है।
4. आंखें बंद कर लें, क्योंकि हमारा सारा ध्यान हमारे पेट में होगा, हमें आंखें खुली रखने की आवश्यकता नहीं है। खुली आंखें केवल हमारा ध्यान ही इधर–उधर, आस–पास के वातावरण में भटकाएंगी, इसलिए आवश्यक है कि आप आंखें बन्द ही रखें।
5. अब हम अपना मन पेट में लेकर जाएंगे; और जागरुकता के साथ यह जानते हुए कि श्वास भीतर जा रहा है, हम पेट में हो रहे उभार की अनुभूति साक्षी भाव से करते हुए, मन में धीमे से कहेंगे ''आना'' (श्वास का भीतर जाना) और जब श्वास बाहर जा रहा हो ''पाना'' (श्वास का बाहर जाना)। आप इस मन को एकाग्र और शान्त करने की ध्यान विधि तब तक करते रहें जब तक आप को शरीर के किसी और अंग में संवेदना की अनुभूति नहीं होती है, और जब आप को शरीर के किसी और अंग में संवेदना की अनुभूति होने लगे तब आप मन को उस अनुभूति पर केंद्रित कर उसे केवल साक्षी भाव (स्वाभाविक भाव) से देखेंगे।

पुनः हम यह स्मरण कर लें कि हमें श्वास द्वारा हो रहे पेट पर उभार और उसके घटाव की अनुभूति को जानते हुए मन में ''आना'' और ''पाना'' यह आवश्यक दोहराना है। यह बिल्कुल इसी प्रकार होना चाहिए; जैसे कि आप अपने पेट से बात कर रहे हैं। आप इस विधि का अभ्यास पाँच से दस मिनट तक करें, लेकिन यदि आप चाहें तो ये अवधि बढ़ा भी सकते हैं।

हमारा अगला कदम मानस के चार भागों को व्यवहारिक रूप से ध्यान साधना में सम्मिलित करना है, काया, संवेदना, मन और धम्मा। जहां तक मानस के पहले (काया) भाग का संबंध है, नए साधक के लिए श्वास द्वारा हो रहे पेट पर उभार और उसके घटाव की अनुभूति करने का अर्थात् ''आना– पाना'' का अभ्यास पर्याप्त होगा। लेकिन कुछ समय बाद आपको ''आना– पाना'' के अभ्यास के साथ–साथ ये भी जानने का अभ्यास करना चाहिए कि किस प्रकार बैठा हूं और मन में स्पष्ट रूप से यह विचार स्वाभाविक रूप से उजागर होना चाहिए ''बैठा हूं'– या ''लेटा हूं'', लेटा हूं''।

दूसरे भाग (संवेदना) का अभ्यास हमें शरीर में हो रही संवेदनाओं की अनुभूति साक्षी भाव से करते हुए करना है। साधना का अभ्यास करते समय यदि शरीर पर किसी भी प्रकार की संवेदना की अनुभूति होती है तो हम अपना ध्यान ''आना– पाना'' से हटा कर, संवेदना पर लाएंगे। यदि संवेदना पीड़ा की है, तब हम पीड़ा को ही अपनी साधना का आधार बना कर, पीड़ा की अनुभूति को साक्षी भाव से देखेंगे।

मानस के चारों भागों में से कोई भी अंग हमारी साधना का आधार बन सकता है क्योंकि चारों अंग हमें वास्तविकता से परिचित करवाते हैं अर्थात् सत्य का दर्शन कराते हैं। इसीलिए यह आवश्यक नहीं है कि आप सदैव ही ''आना– पाना'' का अभ्यास करें। ''आना– पाना'' करते समय जब आपको पीड़ा की अनुभूति होने लगे आप ''आना– पाना'' की जगह, पीड़ा की अनुभूति पर अपना मन केन्द्रित कर उसके वास्तविक स्वभाव को जानने का प्रयत्न, साक्षी भाव से करेंगे। हम

पीड़ा की अनुभूति को द्वेष के भाव से नहीं देखेंगे, उसका मूल्यांकन नहीं करेंगे बल्कि साक्षी भाव से देखेंगे, जैसा कि मूल्यांकन पहले भी समझाया गया है। साधक पीड़ा के प्रति कोई भी प्रतिक्रिया (द्वेष–क्रोधित होना, तनाव उत्पन्न करना, चिंता करना) न करते हुए मन को शांत रखते हुए केवल पीड़ा की अनुभूति को उसके वर्तमान स्वरूप को देखते हुए मन में दोहराएंगे ''पीड़ा'', ''पीड़ा'', ''पीड़ा''....जब तक कि पीड़ा अपने आप स्वाभाविक रूप से नहीं चली जाती है।

जब हम सुख और आनंद अनुभव करते हैं तब हम उसके अनित्य स्वभाव को समझते हुए केवल उसके प्रत्यक्ष वास्तविक स्वभाव को जानेंगे न कि उसकी अनुभूति को अच्छा जानकर उसको भोगने लगेंगे और मन ही मन दोहराएंगे ''प्रसन्न'', ''प्रसन्न''। इसी प्रकार जब हम शान्ति अनुभव करते हैं, मन ही मन दोहराएंगे ''शांत'', ''शांत'', ''शांत'' जब तक कि यह सुखद अनुभूति समाप्त नहीं होती है। इस प्रकार हम शांति की अनुभूति से भी भोगता भाव समाप्त कर उसके वास्तविक अनित्य स्वरूप को देखते हैं। सुखद और शांति की अनुभूति हमारे भोगता भाव को समाप्त करने का आधार बनेगी। क्योंकि भोगता भाव, हमारे भोगने वाले स्वभाव को बढ़ावा देते हुए हमें सदैव असंतुष्ट रखता है और हम हर सुखद अनुभूति को अच्छा जानकर भोगने लगते हैं और जब वह अनुभूति समाप्त होती है, हम अत्यंत दुःख भोगने लगते हैं।
जैसे ही शरीर पर होने वाली संवेदना या कोई अन्य अनुभूति समाप्त हो जाए, हम फिर से ''आना– पाना'' का अभ्यास करने लगेंगे।

साधना करते हुए मानस के तीसरे भाग ''मन'' में यदि कोई विचार उत्पन्न हो तब हम ''विचार कर रहा हूं'' इस प्रकार उसे उसके प्रत्यक्ष वास्तविक स्वभाव में जानकर मन में दोहराएंगे ''विचार'', ''विचार'', ''विचार''। ध्यान रहे इस बात का कोई महत्व नहीं है कि विचार भूतकाल से जुड़ा है या विचार भविष्य से जुड़ा है या फिर दुःखद है या सुखद है। इस प्रकार के विचार मन में लाकर हमें मन को भटकाना नहीं है। हमें केवल विचार है, केवल उसका प्रत्यक्ष वास्तविक स्वभाव साक्षी भाव से देखना है, और जब विचार समाप्त हो जाए, हम फिर से ''आना– पाना'' का अभ्यास करने लगेंगे।

मानस का चैथा भाग ''धम्मा'', सुखद अनुभूति को अच्छा जानकर भागेंगे नहीं बल्कि उसके वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते हुए, मन ही मन दोहराएंगे ''चाहिए'', ''चाहिए'' या ''सुखद'', ''सुखद'', और हम जब भी अपने अन्दर भय, क्रोध, चिंता, तनाव देखेंगे हम इन विकारों के अनित्य वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते हुए मन ही मन दोहराएंगे ''भय'', ''चिन्ता'',' ''चिन्ता'', ''क्रोध'', ''क्रोध''। इसी प्रकार आलस्य, निद्रा के, अनित्य वास्तविक स्वभाव को यथाभूत समझते हुए मन ही मन दोहराएंगे ''आलस'', ''आलस'', ''थकान'' ''थकान'', ''निद्रा'', ''निद्रा'' इसी प्रकार हम अपने अंदर के बेचैनी के भी प्रत्यक्ष रूप को जानते हुए मन ही मन दोहराएंगे ''मन भटक गया'' ''मन भटक गया'', ''बेचैनी'', ''बेचैनी'' या ''व्याकुल'', ''व्याकुल'' इत्यादि ।

जैसे ही विकार शांत हो, समाप्त हो जाए, हम फिर से ''आना– पाना'' का अभ्यास करने लगेंगे।

औपचारिकता से ध्यान साधना का अभ्यास करने के बहुत अधिक लाभ हैं।2 सबसे पहला तो यह होगा कि इस प्रकार मन को एकाग्र रख कर जागरुकता से अभ्यास करने के परिणामस्वरूप मन शांत और प्रसन्न रहने लगेगा, मन को बहुत हल्का अनुभव होगा। प्रतिक्रिया नहीं करने के परिणामस्वरूप् मन, भय, तनाव, चिंता इत्यादि अन्य विकारों से मुक्त अनुभव होगा। बहुत से साधक यदि निरंतर, परिश्रम करते हुए साधना विधि का क्रम से अभ्यास करेंगे तब वह जल्दी ही अत्यन्त शान्ति और सुख अनुभव करने लगेंगे। लेकिन हमें इस बात का भी ध्यान रखना है कि सुख और शांति की अनुभूति करना हमारी साधना का अंतिम लक्ष्य नहीं है। यह तो केवल साधना के अभ्यास के फलस्वरूप है। इसलिए सुख और शान्ति भी हमारे लिए अन्य अनुभूतियों की ही भांति है। हम इस प्रसन्नता और शांति की अवस्था को भी भोगता भाव से नहीं बल्कि दृष्टा भाव अथवा साक्षी भाव से देखेंगे। इस प्रकार निरंतरता से अभ्यास करते हुए हम जल्द ही यह समझने लगेंगे कि सत्य में साक्षी भाव ही हमें वास्तव में शांति और सुख देता है न कि भोगता भाव।

दूसरा लाभ यह होगा कि ध्यान साधना का अभ्यास, हम में हमारे समाज को और आस–पास के वातावरण को समझने की सकारात्मक सोच पैदा करेगा, जो कि बिना साधना के अभ्यास के संभव नहीं है। हम यह बहुत अच्छी तरह से समझने लगेंगे कि हमारे अंदर मन के विकार ही वास्तव में हमारे दुःखों का कारण है। बाहर की वस्तुएं, परिस्थितियां, रूप इत्यादि तो केवल माध्यम मात्र हैं।

हम यह समझने लगेंगे कि हम केवल सुख और शांति की प्राप्ति की आशा करने के बावजूद, अंत में केवल दुःख क्यों भोगते हैं। कैसे राग और द्वेष क्षणिक भर में परिवर्तित होते रहते हैं और हम अंधकार में किस प्रकार इन्हें भोगने लगते हैं और अपने ही दुःखों को बढ़ाने लगते हैं। इसलिए सुखद और दुःखद अनुभूतियों के प्रति राग और द्वेष का भाव रखना व्यर्थ है।

हम यह भी समझने लगेंगे कि किस प्रकार मन और छः इन्द्रियों का प्रपंच हमारे भीतर चलता है। किस प्रकार इस प्रपंच को जाने बिना संसार के सभी प्राणी एक दूसरे के व्यवहार को देख, भाषा के प्रयोग को देख उनका मूल्यांकन करते रहते हैं और उन्हें घृणा और प्रेम के तराजू में तोलने लगते हैं। हम ध्यान विधि के अभ्यास से ये जानने लगते हैं कि संसार के सभी प्राणी स्वयं ही अपने दुःखों और सुखों के मालिक हैं। इसलिए हम स्वाभाविक रूप से क्षमा भाव अनुभव करने लगते हैं और संसार के सभी प्राणियों को उनके वास्तविक स्वभाव के साथ स्वीकार करने लगते हैं।

तीसरा लाभ यह होगा कि हम समाज में हो रहे प्रत्येक कार्य के प्रति, स्वयं द्वारा हो रहे प्रत्येक कार्य और प्रतिक्रिया के प्रति जागरूक रहते हैं। पहले तो हम अपने ही कार्यों के प्रति जागरूक नहीं होते थे, हम बिना सोचे समझे कुछ भी करते और बोलते थे। पर अब ध्यान साधना के अभ्यास से हम जागरूकता के साथ अपना जीवन व्यतीत करने लगते हैं। हम अपने प्रतिदिन के कार्यों को बड़ी ही सूझ–बूझ के साथ सावधानीपूर्वक और जागरूकता के साथ करने लगते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि हम जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना भी बहुत ही सहजता से और समझदारी से करेंगे और मन का संतुलन भी बनाये रखेंगे। और जब समझदार साधक कड़े परिश्रम से साधना विधि का निरंतर, क्रम से अभ्यास करता है, तब वह जीवन में आने वाली अति विषम परिस्थितियों, भयंकर रोग या फिर मृत्यु का भी बड़े ही धैर्य से सामना करने में सक्षम हो जाता है।

चैथा लाभ यह होगा कि हम साधना के वास्तविक लक्ष्य की ओर बढ़ने लगते हैं जो कि मन के सभी विकारों का अंत करता है। मन के विकार, द्वेष–व्याकुलता, चिंता, डर, तनाव, क्रोध, वासना, ईष्र्या, राग–द्वेष, राग–लोभ, अभिमान, आलस्य और अविश्वास ही हमारे दुःखों का कारण है और हम देखने लगेंगे कि कैसे हमारा ही मन इन विकारों के कारण हमारा और हमारे संपर्क में आने वाले सभी प्राणियों का जीवन दुःखों और तनाव से भर रहा है। इस सत्य को जब मन अनुभव द्वारा जान लेता है तब वह प्रतिक्रिया करना बंद कर इन विकारों के वास्तविक स्वभाव (अनित्य) को जानते हुए इनका अंत करने लगाता है।

औपचारिक साधना और उसके अभ्यास द्वारा होने वाले लाभ का यह मूलभूत विवरण है। अब मैं चाहूँगा कि प्रत्येक पाठक दूसरे अध्याय को पढ़ने से पहले या फिर अपने अन्य कार्यों में व्यस्त होने से पहले, कम से कम एक बार इस साधना विधि का अभ्यास अवश्य करे, जिससे उन्हें स्मरण रहे कि पहले अध्याय में क्या सीखा है। संभव हो तो अभी अभ्यास करें। आप पाँच से दस मिनट तक अभ्यास करें और यदि चाहें तो अवधि बढ़ा भी सकते है। अंत में यही कहना चाहूँगा कि जिस प्रकार व्यंजन सूचि या भोजन सूचि को केवल देख लेने मात्र से हमारी भूख नहीं बुझती है, भोजन को खाकर भूख दूर होती है, उसी प्रकार केवल साधना विधि का अध्याय पढ़ लेने से आपके विकार दूर अथवा दुःख दूर नहीं होंगे, आपको निरन्तर साधना विधि का अभ्यास क्रम से करके ही लाभ प्राप्त होगा।

टिप्पणी:
1. औपचारिक तौर से बैठकर ध्यान साधना की दो मुद्राओं को इस पुस्तिका के अंत में तस्वीरों द्वारा दर्शाया गया है। आप साधना का अभ्यास करने से पहले इन तस्वीरों को देख लें।

2. औपचारिक साधना में होने वाले चार लाभ (बोध) "दीघ निकाय" (DN 33) के ''संगतिसुत्त'' से लिए गए हैं।

3. साक्षी भाव अथवा दृष्टा भाव से हमारा अभिप्राय केवल किसी वस्तु, स्थिति, रूप या विचार को उसके स्वतंत्र स्वरूप में देखने मात्र से हैं अथवा मन द्वारा किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया नहीं करने से है।

अध्याय–तीन
चल कर ध्यान कैसे लगाएं

इस अध्याय में चलने की साधना की तकनीक को विस्तार से समझेंगे। जैसे कि हमने बैठ कर ध्यान साधना में सीखा, हमारी साधना का मुख्य लक्ष्य मन को वर्तमान में केन्द्रित करना और जो कुछ भी अपने आप घटित हो रहा है, उस अनुभव के वास्तविक स्वरूप को साक्षी भाव से देखना है, यही अभ्यास हम चलते हुए भी करेंगे।

वैसे तो चलकर ध्यान, बैठ कर ध्यान लगाने समान ही है परंतु जो लोग किसी कारणवश चल कर ध्यान नहीं लगा सकते हैं वह इस सोच में पड़ सकते हैं कि चल कर ध्यान लगाने का क्या उद्देश्य और लाभ है। यह सत्य है कि चल कर ध्यान लगाने के अपने बहुत से विशिष्ट लाभ हैं जो कि परंपरागत रूप से बैठ कर ध्यान लगाने से प्राप्त नहीं किये जा सकते हैं। परन्तु आप आश्वस्त रहें क्योंकि यदि आप बैठ कर भी निरंतर विधिवत ध्यान का अभ्यास करेंगे, आप को बहुत लाभ प्राप्त होगा। चल कर ध्यान लगाने के लाभों की गणना इस प्रकार है।1

पहला लाभः चल कर ध्यान लगाने से हमारा स्वास्थ्य अच्छा रहता है। सदैव बैठे रहने से, हमारी कार्य शक्ति कम होती हे और हमारा शरीर कमजोर पड़ने लगता है। चल कर ध्यान लगाने से हमारा शरीर हृष्ट–पुष्ट, स्वस्थ रहता है और यह हमारे प्रतिदिन व्यायाम करने की आवश्यकता को भी पूरा करता है।

दूसरा लाभः चल कर ध्यान लगाने से हमारी सहनशीलता और धैर्य शक्ति बढ़ती है। क्योंकि आप चलते समय कार्यशील होते हैं। इसलिए हमें उतनी सहनशीलता और धैर्य शक्ति की आवश्यकता नहीं होती है जितनी कि बैठ कर ध्यान लगाते समय होनी चाहिए। चलकर ध्यान लगाने से हमारे प्रतिदिन होने वाले कार्यों में और औपचारिक रूप से बैठ कर ध्यान लगाने में संतुलन आता है।

तीसरा लाभः चल कर ध्यान लगाने से बहुत से शारीरिक रोग भी दूर होते हैं। जहां बैठे रहने से सुस्ती अनुभव होने लगती है वहीं चल कर ध्यान लगाने पर हमारे रक्त संचालन और शरीर में हो रही जैविक गतिविधियों में संतुलन आता है। धीमे, क्रमबद्ध और विनम्रता से चल कर ध्यान लगाने से हम चिंता और तनाव से मुक्त रहते हैं। यह मूलभूत तौर से तो शरीर को स्वस्थ रखता ही है परंतु इस प्रकार ध्यान लगाने से हृदय रोग, गठिया रोग जैसे कष्टदायक रोग भी दूर होने लगते हैं।

चैथा लाभः चल कर ध्यान लगाने से हमारी शक्ति बढ़ती है। जहां बैठे रहने से हमें भोजन को पचाने में कठिनाई होती है और मोटापा बढ़ता है वहीं चल कर ध्यान लगाने से हम भोजन को पचाने का कार्य और ध्यान साथ–साथ लगा सकते हैं।

पांचवा लाभः चल कर ध्यान लगाने से मन की एकाग्रता में संतुलन आता है। यदि हम केवल बैठ कर ध्यान लगाते हैं तब या तो मन की एकाग्रता कमजोर होगी, मन जल्दी ही भटक जाता है और या तो मन एकदम एकाग्र रहेगा। परिणामस्वरूप हम जल्दी ही बेचैनी और सुस्ती अनुभव करने लगते हैं। चलते समय हम गतिशील होते हैं। सुस्ती और बेचैनी कम महसूस होती है जिससे मन और शरीर दोनों ही स्वाभाविक रूप से जल्दी ही शांत हो एकाग्र होने लगते हैं। यदि चल कर ध्यान, बैठ कर ध्यान लगाने से पहले लगाया जाए तब मन की एकाग्रता संतुलित रहती है और ध्यान लगाना सरल हो जाता है।

चल कर ध्यान लगाने की प्रक्रिया इस प्रकार है:
1. सारी ध्यान प्रक्रिया के दौरान दोनों पैर एक साथ रहने चाहिए, पैर लगभग एक दूसरे को छू रहे हों। उनके बीच में बहुत अधिक अंतराल (दूरी) नहीं होना चाहिए।
2. दोनों हाथ पकड़ लें, दाहिने हाथ से बायाँ हाथ पकड़ें, आप अपनी सुविधापूर्वक हाथों को पेट के आगे से या पीठ के पीछे से पकड़ सकते हैं।
3. दोनों आँखों को खुला रखें और पथ पर टिकाते हुए, छः कदम की दूरी तक अपना ध्यान केन्द्रित करें।
4. सीधा चलें, बिल्कुल जैसे हम लाइन या कतार में चलते हैं और अब दस या पंद्रह कदम (तीन या पाँच मीटर) की दूरी तक चलें।
5. पहले दाहिना पैर उठा कर, बिल्कुल बराबर जमीन पर एक कदम की दूरी पर रखें, सारा पैर एक साथ भूमि को छूना चाहिए, दाहिने पैर की एड़ी बिल्कुल बाएं पैर की उँगलियों के आगे लाइन में रखें।
6. आपकी चाल साधारण और स्वाभाविक होनी चाहिए। शुरुआत से लेकर अंत तक चाल में कोई अड़चन नहीं होनी चाहिए। बिल्कुल रुकना नहीं है और अपनी चाल बदलनी नहीं है।

7. एक के बाद एक कदम बढ़ाते हुए, दाहिने पैर की एड़ी बिल्कुल बाएं पैर की उँगलियों के आगे लाइन में रखते हुए, इसी प्रकार बायें पैर की एड़ी को दाहिने पैर की अँगुलियों के आगे लाइन में रखते हुए, कतार में चलते हुए, एक–एक कदम की दूरी पर पैर रखेंगे।
8. जिस प्रकार हम ''आना–जाना'' का ध्यान करते समय, भीतर आते–जाते श्वास के प्रति जागरूकता रखते हुए मन में यह मंत्र दोहराते हैं ''आना'' ''जाना'', बिल्कुल उसी प्रकार हम हर कदम के साथ अपनी जागरूकता रखते हुए, जब दायाँ कदम बढ़ाते हैं, मन में धीमे से दोहराएंगे, ''दायाँ कदम'' और बायाँ पैर बढ़ाते हैं मन में धीमे से दोहराएंगे, ''बायाँ कदम''।
9. हमें हर क्षण के प्रति जागरूकता बनाए रखनी है और हर कदम की जानकारी बनाए रखनी है, जागरूकता बिल्कुल कदम के साथ होनी चाहिए ना कि कदम रखने के बाद।

यदि हम ''दायाँ कदम'' मन में दायाँ पैर रखने से पहले दोहराते है तब हमने जिस क्षण को जाना वह अभी वर्तमान नहीं है, भविष्य में है और यदि हम ''दायाँ कदम'' मन में दायाँ पैर रखने के बाद दोहराते हैं तब हमने भूतकाल के क्षण को जाना और वह भी हमारा वर्तमान नहीं है । इसलिए इसे हम ध्यान साधना नहीं मान सकते हैं। हमें यह सदैव याद रखना है कि हमारी साधना का आधार हमारा वर्तमान है।
प्रत्येक क्षण की जागरूकता रखते हुए, जब हम अपना दायाँ पैर उठाते हैं, हम यह जानते हुए कि दायाँ पैर उठा रहा हूँ और मन में यह भी दोहराते हैं, ''दायाँ कदम''। हम जब पैर उठा रहे हों तब हम मन में कहेंगे ''दायाँ'' और जब पैर भूमि को छूने लगे तब ''कदम''। यही प्रक्रिया बायाँ कदम रखते हुए करनी है। इस प्रकार हमें प्रत्येक कदम के साथ–साथ अपनी जागरूकता बनाए रखनी है।
दस से पंद्रह कदम की दूरी तय करने के बाद आप इस प्रकार रुकेंगेः पहले पिछले कदम को अगले कदम के साथ रखते हुए, यह भी जान रहे हैं कि कदम उठा है और मन में धीमें से कहेंगे ''रुक रहा हूं'' और जब खड़े हो जाएं तब मन में धीमे से कहेंगे ''खड़ा हूं''। इस प्रकार प्रत्येक क्षण के सत्य को अपनी अनुभूति पर उतारना है।

दूसरी दिशा में इस प्रकार घूमना है:–
1.कहेंगे, जब घूमने लगे तब शब्द ''घूम'' का आरंभ मन में इस प्रकार करना है ''घू'ऊ'ऊ'ऊ'म'' और जब पैर भूमि पर रखने लगे तब यह भी जान रहे हैं कि पैर रख रहा हूं और मन में भी दोहरा रहे हैं ''रहा हूं''।
2. पहले दायाँ पैर उठाएंगे, यह जागरूकता रखते हुए कि पैर उठा है हम मन में धीमे से कहेंगे ''घूम'' और पैर को 90 डिग्री तक घुमा कर भूमि पर रखते हुए मन में कहेंगे ''घूम रहा हूं'' । यहां हम शब्द ''घूम'' को थोड़ा बड़ा कर इस प्रकार सोचेंगे और उसे भी 90 डिग्री तक घुमा कर बिल्कुल दायें पैर के साथ भूमि पर रख कर और मन में हर क्षण की जागरूकता रखते हुए कहेंगे ''घूम रहा हूं''।
3. अब ऊपर बताई गई प्रक्रिया को एक बार फिर दोहराना है और दोनों पैरों को एक बार फिर उसी प्रकार 90 डिग्री के कोण से घुमा कर सीधे दूसरी दिशा में मुख करके खड़े हो जाना है। जब हम दूसरी दिशा में मुख करके खड़े हो जाएंगे। हम उस क्षण की जागरूकता रखते हुए कहेंगे ''खड़ा हूं'' ''खड़ा हूं''।
4. अब हम बिल्कुल उसी प्रकार चलना शुरू करेंगे जिस प्रकार हमने ध्यान साधना का प्रारंभ किया था। पहले दायाँ कदम बढ़ाएंगे और मन में धीमे से दोहराएंगे, ''दायाँ कदम'' और जब बायाँ पैर बढ़ाएंगे मन में धीमे से दोहराएंगे, ''बायाँ कदम''।

जब ध्यान करते समय हमारे मन में कोई विचार या कुछ और अनुभव (पीड़ा, भय, सुख, दुःख) हो या फिर शरीर पर कोई अनुभूति होने लगे हम इनकी ओर ध्यान नहीं देंगे, हमें मन में चलने वाले विचार या शरीर पर होने वाली किसी भी अनुभूति को नजरंदाज करना है ताकि हम अपना मन अपने कदमों की ओर केन्द्रित रख सकें। परंतु यदि प्रयत्न करने पर भी हमारा ध्यान भंग हो रहा हो तब हम चलना बंद कर देंगे और इस प्रकार रुकेंगे; जागरूकता के साथ पिछले पैर को अगले पैर की ओर लाते हुए मन में दोहराएंगे ''रुक रहा हूं'' और इस प्रकार यह भी जान रहे हैं कि रुक रहा हूं और पैर को बिल्कुल अगले पैर के साथ लाकर भूमि पर धीमे से रखेंगे, और जब खड़े जो जाएं तब मन में दोहराएंगे ''खड़ा हूं'', ''खड़ा हूं''। अब हम उस विचार या फिर अनुभूति की ओर मन को ले जाते हुए उसे साक्षी भाव से देखना आरंभ कर उससे संबंध रखने वाला एक शब्द मन में दोहराएंगे जैसे ''विचार'', ''विचार'', ''विचार'' या फिर यदि पीड़ा अनुभूति है तो ''पीड़ा'', ''पीड़ा'', ''पीड़ा'' इत्यादि। जब मन शांत होने लगे और विचार या अनुभूति समाप्त हो जाएं हम फिर से चलना आरंभ कर देंगे और ध्यान साधना करते हुए मन को हर कदम के साथ जागरूक रखते हुए मन में फिर से दोहराना आरंभ कर देंगे, ''दायां कदम'', ''बायाँ कदम''।

इस प्रकार हम दस से पंद्रह कदम की दूरी तय करते हुए रुक कर घूम जाएंगे और दूसरी दिशा में भी फिर से दस से पंद्रह कदम की दूरी तय करके, वही क्रम फिर से दोहराएंगे और अपनी ध्यान साधना करते रहेंगे।

सामान्यतः हमें चलने और बैठ कर ध्यान करने की अवधि में संतुलन रखना चाहिए। हमें उतना ही समय बैठ कर ध्यान करना चाहिए जितना समय हम चलने में प्रयोग कर रहे हैं। और यदि हम चल कर ध्यान पहले लगाते हैं और उसके बाद बैठ कर ध्यान साधना करते हैं तब हम देखेंगे कि हमारा मन पहले से ही शांत और एकाग्र है और हमारे लिए बैठ कर ध्यान लगाना सरल हो जाएगा। इस प्रकार प्रयत्न करें कि साधना का आरंभ दस मिनट से करें और पहले दस मिनट चल कर ध्यान लगाएं और फिर बाद में दस मिनट बैठ कर ध्यान लगाएं।

अब फिर से मैं सभी पाठकों से यह निवेदन करता हूं कि वह फिर से यहां रुक कर इस ध्यान साधना विधि को व्यावहारिक रूप से करें और जो कुछ भी आपने इस अध्याय में पढ़ा है उसे दोहराएं। मैं फिर से दोहराता हूं कि केवल यह पुस्तिका पढ़ कर ही आपके दुःख दूर नहीं होंगे। आपको प्रतिदिन ध्यान साधना का अभ्यास करना होगा और जब आप ऐसा करने लगेंगे आप स्वयं इस साधना के लाभ अनुभव करने लगेंगे। मैं आपकी ध्यान साधना के प्रति रूचि के लिए आपका धन्यवाद करता हूं और आपको मंगल मैत्री देते हुए आपकी मंगल कामना करता हूं। आप सब दुःखों और पीड़ाओं से मुक्त हो! आपका मन विकार रहित हो। शान्त हो जाएं! आपको शांति और सुख प्राप्त हो!

टिप्पणी:

1. इस साधना द्वारा होने वाले पाँच लाभ "अंगुत्रा निकाय" के ''चंकम्सुता'' (5.1.3.9.) से लिए गए हैं।

2. चल कर ध्यान साधना की मुद्राओं को इस पुस्तिका के अंत में तस्वीरों द्वारा दर्शाया गया है। आप साधना का अभ्यास करने से पहले कृपया इन तस्वीरों को देख लें।

अध्याय–चौथा
मूल सिद्धांत

इस अध्याय में मैं ऐसे चार मूल सिद्धांत बताऊंगा जो ध्यान के अभ्यास के लिए जरूरी हैं।1 ध्यान का अभ्यास आगे पीछे टहलने या स्थिर होकर एक जगह बैठने से कहीं बढ़कर है। ध्यान में अभ्यास से किसी को कितना फायदा पहुँचता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि ध्यान के समय एक पल से दूसरे पल उसके मन की क्या स्थिति है, न कि इस बात पर कि वह कितनी देर ध्यान करता है।

सबसे पहला मुख्य सिद्धांत यह है कि ध्यान हमेशा वर्तमान की घड़ी में किया जाता है। ध्यान में हमेशा वर्तमान घड़ी के छोटे छोटे पलों पर केन्द्रित करना होता है। मन को भूत काल या भविष्य काल के पलों में रहने नहीं देना चाहिए। साधक अथवा साधिका को चाहिए कि वह ऐसे विचारों से दूर रहे कि, ''मैंने कितनी देर अभ्यास कर लिया'' या ''अभी मेरे

अभ्यास में और कितने मिनट बाकी हैं''। वर्तमान के हर पल में जो भी हरकत हो रही हो, उसी को देखना चाहिए, एक पल के लिए भी मन को वर्तमान से हटकर भूत अथवा भविष्य काल में भटकने न दें।

जिस पल हमारा नाता वर्तमान की घड़ी से टूट जाता है, उस पल हमारा नाता वास्तविकता से भी टूट जाता है।

हर अनुभव एक पल के लिए ही होता है, इसलिए यह जरूरी है कि हम हर अनुभव को उसके अपने पल में ही इस तरह महसूस करें कि हम उसका उभरना, रहना और फिर उसका समाप्त होना जान सकें। इस तरह हर अनुभव के उभार को, उसके जीवन को और उसके अन्त को जब हम पल पल महसूस करेंगे, तभी हम वास्तविकता को देख पाएंगे।

दूसरा मूल सिद्धांत यह है कि, ध्यान का अभ्यास निरंतर होना चाहिए। किसी भी प्रशिक्षण की तरह ध्यान का प्रशिक्षण भी मजबूत होना चाहिए, उसकी आदत होनी चाहिए जिससे की साधकों को आसक्ति और पक्षपात की बुरी आदतों से छुटकारा मिल सके।

यदि कोई रुक रुक कर ध्यान का अभ्यास करेगा और बीच बीच में लापरवाह हो जाएगा तो ध्यान से जो भी स्पष्टता प्राप्त हुई होगी वह पुनः कमजोर हो जायेगी। अगर ऐसा होगा तो साधक अपने अभ्यास से हुए फायदों को ठीक से समझ नहीं पायेगा और उसे लगेगा कि जैसे ध्यान करने से कोई फायदा नहीं है। यही कारण है कि अक्सर नए साधकों को जब तक अपने दैनिक जीवन में ध्यान को ढाल लेने का अभ्यास नहीं हो जाता तब तक उन्हें निराशा भी महसूस होती है। जब नए साधकों को ध्यान को अपने जीवन में पूरी तरह ढालने की आदत हो जाती है तब उनकी एकाग्रता बढ़ती है और उन्हें ध्यान से मिले फायदों का आभास होने लगता है।

साधकों को कोशिश करनी चाहिए कि अभ्यास निरंतर चलता ही रहे, एक पल से दूसरे पल, बिना रुके। जब वह बैठकर अभ्यास कर रहे हों तब भी उन्हें एक पल से दूसरे पल के बीच हर अनुभव का उभरना, उसका रहना और उसका शेष होना महसूस करना चाहिए (''उसका उभार'', ''उसका जीवन'', ''उसकी मृत्यु'' को एक मंत्र की तरह प्रयोग करना चाहिए।)

चलते हुए ध्यान करते समय, साधक को जितना भी हो सके, इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि जैसे जैसे पैरों में हरकत हो वैसे–वैसे उसी पैर पर अपना ध्यान केन्द्रित करें बिना रुके। बैठक कि मुद्रा में ध्यान करते समय, साधक को पेट के बढ़ने और घटने पर पूरा ध्यान केन्द्रित करना चाहिए, एक एक पल में, निरंतर बिना किसी रुकावट के।

इसके अलावा, जब कोई ध्यान की अपनी मुद्रा बदल रहा हो, जैसे टहलने की मुद्रा से बैठक की मुद्रा में आ रहा हो, तो इस परिवर्तन के भी हर छोटे छोटे पलों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए जैसे–झुकना, छूना, बैठना...इत्यादि। जब बैठक की मुद्रा में आ जाएँ तब तुरंत ही ध्यान को पुनः पेट के साँसों के साथ होने वाले उभार, उतार पर केन्द्रित करना चाहिए। जब बैठक मुद्रा की समय सीमा समाप्त हो जाए तो वैसे ही पल पल, दैनिक जीवन के कार्यों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। इस तरह अपनी अपनी क्षमता के अनुसार ध्यान को निरंतर बनाके रखने की कोशिश करनी चाहिए।

ध्यान बरसात के पानी की तरह है। जब कोई हर पल, और पल पल वास्तविकता के प्रति जागरूक रहता है तो वह बरसात के पानी की एक बूँद के जैसा होता है। हालाँकि, भले ही यह बात महत्त्वपूर्ण न लगती हो, परन्तु जब कोई निरंतर अपनी चेतना को वर्तमान के छोटे छोटे हर एक पल पर बनाये रखता है, इस तरह की उसे हर एक पल का उसी पल में ज्ञान हो, तो फिर यही छोटे छोटे पल इकट्ठे होकर अंतर–बोध और गहरी एकाग्रता को बढ़ावा देते हैं। यह ठीक उसी तरह होता है जैसे बरसात की छोटी छोटी बूँदें इकट्ठी होकर एक जलाशय को भर देती हैं और बाढ़ भी ले आती है।

तीसरा मूल सिद्धांत यह बताता है कि सजग जागरूकता कैसे बनायी जाए। मामूली जागरूकता से कुछ ख़ास फायदा नहीं होता क्योंकि यह तो ध्यान से साधना न करने वालों और यहाँ तक कि जानवरों में भी मौजूद होती है। इसके अलावा मामूली जागरूकता हमें इतना आभास नहीं दिला सकती कि जिससे हमें वास्तविकता का गहरा बोध हो और हमारी बुरी आदतें और प्रवृत्तियां भी छूट सकें।
इस ब्रह्माण्ड के सर्वश्रेष्ठ सत्य को हम जान सकें इसके लिए मन के तीन गुण होने चाहिए, जो इस प्रकार हैः–2

1. **कोशिश:** ''उभार'', ''जीवन'', ''अन्त'' यह मंत्र उपयोग में लाने से ही वास्तविकता का ज्ञान नहीं हो सकता। साधक को चाहिए कि वह अपनी चेतना को उस पल के उभरे हुए विषय पर केन्द्रित करे, चाहे वह मन में उभरा हुआ कोई भी विषय क्यों न हो, फिर उस विषय के जीवन, उसके अन्त तक चेतना को उसी पर बना कर रखे। उदाहरण के तौर पर, जब कोई अपने पेट के उभार और उतार पर ध्यान केन्द्रित करे तो मन में बताये गए मंत्र का उच्चारण करने के बजाये चेतना को पेट पर ही केन्द्रित करे और जैस–जैसे उसमें हरकत हो वैसे–वैसे चेतना को उस हरकत के साथ ही रखें।

2. **ज्ञान:** जब चेतना को उभरे हुए विषय पर केन्द्रित करें तो उस विषय की शुरूआत से लेकर उसके अंत तक उसे महसूस करें। जैसे अगर विषय ''दर्द'' हो तो साधक को बिना डरे, बिना रुके, दृढ़ता पूर्वक दर्द पर ही चेतना को केन्द्रित करना चाहिए। अगर विषय मन में उभरा हुआ कोई विचार हो तो, साधक को उस विचार पर चेतना केन्द्रित करनी चाहिए, मगर उसमें खोना नहीं चाहिए।

3. **स्वीकृति:** साधक को चाहिए कि विषय का बोध रखे, चेतना एक पल में जिस विषय पर हो, उस विषय को उसके स्वरूप में ही अनुभव करे और ऐसा करते समय यह जरूरी है कि अपनी निजी विचारधारा को तूल न दे। और मन में उभरे हुए सभी विषयों को बराबर ही समझें, पक्षपात न करें। जैसे ही मन में कोई विचार/विषय उभर आता है तो उसके विषय में मन एक निर्णायक की भूमिका अदा करने लगता है, जैसे कि–मेरा, मैं, अच्छा, बुरा, सही, गलत इत्यादि....यहाँ पर ''स्वीकृति'' का अर्थ यही है कि विषय पर इस तरह की यात्रा मन को न करने दें, जो भी विषय हो उसे उसके स्वाभाविक रूप में स्वीकृति दें।

पुराने समय से ध्यान के पांच मुख्य गुण समझे गए हैं। इन पांच गुणों में अच्छी तरह से तालमेल बैठाना, यह साधना का चैथा मूल सिद्धांत है। मन के यह पांच गुण इस प्रकार हैं:–

1. आत्माविश्वास
2. प्रयास
3. जागरूकता
4. एकाग्रता
5. ज्ञान

वैसे तो साधारण तौर पर यह पांच गुण मन के लिए लाभदायक हो सकते हैं, लेकिन अगर इनमें ठीक तरह संतुलन न हो तो यह साधक को नुकसान भी पहुंचा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर: अगर किसी व्यक्ति में बहुत सा आत्मविश्वास हो मगर सही ज्ञान की कमी हो तो, यह बात अनेकों अंधविश्वासों को जन्म दे सकती हैं। ऐसा व्यक्ति किसी भी बात को विश्वास के साथ पक्के तौर पर मान लेगा बिना उस विषय के सही अनुभव की अहमियत को समझे हुए, सम्भावना है कि यह व्यक्ति, अपने इस विश्वास की वास्तविकता की जांच पड़ताल किये बिना, उसका अनुभव किये बिना ही, उसे मन में बसा लेगा। और इस तरह यह विश्वास एक अंधविश्वास का रूप ले लेगा।

इंसान को चाहिए कि वह अपने विश्वास अथवा लम्बे समय से मन में बसी हुई धारणाओं को वास्तविकता की कसौटी पर तोल कर देखने का प्रयास करें। ध्यान करने से, साधक को जो नया ज्ञान मिलेगा, वह उस ज्ञान को अपने मन में बसी हुई पुरानी धारणाओं से न तोलें, बल्कि, यह समझने की कोशिश करें कि मन में जो पहले से धारणाएं बसी हुई हैं, वह शायद गलत हो सकती हैं। ध्यान से प्राप्त हुआ ज्ञान/अनुभव, झूठा नहीं होता। और मान लीजिये कि अगर किसी व्यक्ति के मन में बसी हुई धारणाएं पहले से ही वास्तविकता से निकलती भी हों तब भी, कोई भी विश्वास तभी पूर्ण हो सकता है, जब वह अपने अनुभव से अर्जित किया गया हो न कि जीवन के किसी अन्य माध्यम से।

इसी तरह, यदि किसी व्यक्ति में ज्ञान और विश्वास का सही तालमेल न हो तो, मुम्किन है कि वह व्यक्ति साधना के मार्ग पर चलने से ही कतरायेगा, यह मान कर कि इस मार्ग पर चलने से कोई विशेष फायदा नहीं है। भले ही उसे कोई बहुत बड़ा ज्ञानी–मुनि ही क्यों न समझाए, इस मार्ग पर चलने के फायदों के बारे में। परन्तु बजाये इसके कि वह सोचे ''इस मार्ग पर क्या है, इस पर चलकर मैं भी खोजूँ'' बिना किसी खोज के ही मात्र अपनी बुद्धि पर भरोसा करके वह यह मान लेगा कि इस मार्ग पर कुछ नहीं है। ऐसा व्यक्ति शंका और बहस में पड़ जाएगा, न कि सत्य की खोज में।

इस तरह की प्रवृत्ति से ध्यान के मार्ग पर आगे बढ़ना और भी कठिन हो जाएगा क्योंकि साधक में दृढ़ विश्वास की कमी होगी। ऐसे में मन का एकाग्र होना बहुत कठिन होगा। इसलिए अगर ऐसा होता है, तो उस व्यक्ति को यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि सत्य की खोज के रास्ते में यह जो दृढ़ विश्वास की कमी है, यही उसकी बाधा बनी हुई है। किसी

भी नतीजे पर पहुंचने से पहले उसे चाहिए कि वह ध्यान की साधना के साथ पूरा न्याय करे और पूरी लगन से साधना करे।

अन्य व्यक्ति में हो सकता है कि प्रयास और एकाग्रता का संतुलन सही न हो। ऐसे में हो सकता है कि वह प्रयास तो सही करता हो किन्तु एकाग्रता की कमी के चलते वह, ज्यादा देर ध्यान साधना कर ही न सके। कुछ लोगों को सच में जीवन और उसकी उलझनों के बारे में सोच–विचार करने में ही आनन्द का अनुभव होता है। ऐसे में वह यह नहीं समझ पाते कि इस तरह की हरकत से तनाव बढ़ता है और मन भटकता है। ऐसे व्यक्ति किसी भी अवधि के लिए ध्यान की मुद्रा में बैठने में बहुत मुश्किल पाते हैं, क्योंकि उनके मन में हलचल मची रहती है। ऐसे में साधक को पूरी ईमानदारी से यह समझने की कोशिश करनी चाहिए कि, उसके मन की यह हलचल ध्यान के कारण नहीं है, बल्कि अपनी ही बनायी हुई सालों पुरानी आदतों से है।

ऐसे व्यक्तियों को चाहिए कि वह स्वयं को अपनी वर्षों पुरानी आदत से छुटकारा दिलाने का पूरा प्रयास करें और ऐसा करते समय ढेर सारे धैर्य से काम लें। ऐसा नहीं कि हमें विचारों की जरूरत न हो, कुछ विचार तो जीवन की प्रक्रिया में अनिवार्य हैं ही, किन्तु जीवन जीते समय हमें यह सावधानी रखनी चाहिए कि हम किन विचारों को कितना महत्त्व देते हैं। हमें यह महत्त्व आवश्यकता के अनुसार ही देना चाहिए न कि इन विचारों के साथ बह जाना चाहिए।

आखिर में, ऐसा भी मुम्किन है कि किसी व्यक्ति की बहुत अच्छी एकाग्रता हो, किन्तु प्रयास (कोशिश) में कमी हो। इस तरह का गलत संतुलन होने से वह व्यक्ति साधना के समय आलस का शिकार हो सकता है और उसे नींद भी महसूस हो सकती है। ऐसे में मन बार बार आलस्य को, निद्रा को ढाल बनाकर सही साधना नहीं होने देगा, और साधक सत्य को तत्त्व से महसूस नहीं कर पाएंगे। इसलिए जो व्यक्ति ध्यान साधना के समय निद्रा महसूस करते हों, उन्हें चाहिए कि, यदि थकान हो तो, वह खड़े होकर अथवा चलकर ध्यान का अभ्यास करें ताकि अपने शरीर और अपने मन को ज्यादा चैतन्य रख सकें।

इस तरह, हम यह पाते हैं कि मन के पांचवे गुण का असली अर्थ है कि जो वास्तव में सत्य है। उस तत्त्व को जानें, उसी के अपने स्वरूप में, इसी यथार्थ सत्य का अनुभव उसका अंतर्ज्ञान ही मन का पांचवा गुण है।

यह एक संतुलित मन का दर्पण है, इसीलिए एक तरह से यह बाकी के चार गुणों को संतुलन में लाने के लिए उपयोगी है, और उनके संतुलित होने का प्रमाण भी है। जो व्यक्ति अपने जीवन में ''सचेत रहने'' की इस कला को सीख ले और इसे इस तरह ढाल ले कि जीवन ही एक साधना बन जाए, वह व्यक्ति ध्यान की साधना में भी उतनी ही सफलता का अनुभव करेगा। हर साधक को चाहिए कि वह अपनी साधना को आगे बढ़ाने के लिए दो बातों का लगातार ख़याल रक्खे–एक तो मन के इन चार गुणों में संतुलन बनाना और सत्य को तत्त्व से जानना।

सच यही है कि, ''सचेत रहना'' ही मन के इन चार गुणों को संतुलित बनाने में सहायक होता है। जब साधक के मन में कोई चाह जागे, या फिर कोई घृणा उभरे, तो उसे जागरूक रहते हुए, स्वयं को अपनी वर्तमान मनःस्थिति से अवगत कराना चाहिए, ऐसे–''चाहत चाहत'' अथवा ''घृणा घृणा'' जैसा कि पहले भी बताया गया है, साधक चाहे तो यही क्रिया वह किसी और भाषा में भी कर सकता है। स्वयं को सचेत रखने की इस क्रिया में साधकों को ऐसा भी अंतर्ज्ञान होगा कि किस तरह उनका अपना मन पक्षपात करता है, उसका झुकाव किसी एक तरफ ज्यादा होता है। मन में शंका उभरे तो ''शंका शंका'' से जागरूक रहें, जब मन भटक रहा हो तो जागरूक रहें–''भटक रहा है...भटक रहा है'' यदि नींद आ रही हो तो जागरूक रहें–''नींद नींद''–और साधक अक्सर यह पाएंगे कि सचेत (जागरूक) रहने की इस क्रिया को करने की स्थिति में अपने आप ही सुधार आ जाएगा, बिना किसी विशेष प्रयत्न के। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि जैसा की ऊपर भी बताया गया है कि, सचेत रहने की इस क्रिया से मन अपने आप ही संतुलन बनाने लगता है, ऐसा ही उनका स्वभाव है।

एक बार जब साधक इस क्रिया में निपुणता हासिल कर देता है तो, वह मन में उभरे हुए हर विषय को केवल उसके ''उभरने'' और उसके ''अन्त'' को महसूस करने के लिए सक्षम हो जाता है और ऐसा करते समय उसके मन में कोई विश्लेषण भी नहीं होता। इसके परिणाम स्वरूप, मन से मोह के सारे बंधन और सारे दुःख–दर्द दूर होते चले जायेंगे। जिस तरह एक मजबूत मन वाला व्यक्ति लोहे के सरिये को भी झुकाने में सक्षम बन जाता है, ठीक उसी तरह, जब किसी साधक

का मन मजबूत हो जाता है, तो वह अपने मन को झुकाने में, उसे सांचे में ढाल कर उसे परिपक्व बनाने में बहुत सक्षम हो जाता है। जब मन परिपक्व और संतुलित हो जाता है तो किसी भी व्यक्ति को आत्मा के अपार सुखमय स्वभाव का अनुभव होने लगता है और सारे दुःख–दर्द, उस से दूर, साधक को अपनी साधना निरंतर, बिना रुके करनी है।

पुनः ध्यान साधना के चार मूल सिद्धांत इस प्रकार हैं:–
1. साधक को अपनी साधना में ''वर्तमान'' के प्रति जागरूक रहना है।
2. साधक को निरन्तर प्रयास करना चाहिये।
3. साधक को अपनी साधना में स्पष्ट विचार, प्रयास, ज्ञान और स्वीकृति का अभ्यास करना है।
4. साधक को मन के चार गुणों में संतुलन स्थापित करना है।

यह अध्याय ध्यान के अभ्यास के नज़रिये से बहुत ही उपयोगी है क्योंकि ध्यान साधना के लाभ इस बात पर निर्भर करते हैं कि साधना कितनी बेहतर तरीके से की जाती है, न कि इस बात पर कि, कितनी देर की जाती है।

मैं सच्चे दिल से यह कामना करता हूँ कि आप सभी साधक एवं साधिकाएं, इस पाठ को अपनी साधना में ढाल कर इसके द्वारा अपने जीवन में और भी ज्यादा सुख, शांति और दुःखों से मुक्ति का अनुभव करेंगे।
एक बार फिर मैं आप सबका आभार प्रकट करता हूँ कि आप सब ध्यान की विधि को उत्साह से सीख रहे हैं।

टिप्पणी:
1. ध्यान के यह चार मूल सिद्धांत मुझे मेरे आचार्य श्री टोंग सिरिंमंगलों द्वारा मिले हैं।

2. यह तीन गुण "मझिम्म निकाय" (MN 10) के "सतिपठाना सुत्ता" से लिये गये हैं।

अध्याय–पांच
जागरूकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम

इस अध्याय में मैं ध्यान साधना की तीसरी तकनीक समझाऊंगा ताकि साधक चलकर और बैठकर ध्यान करने में ज्यादा सक्षम हो सकें। अंग्रेजी में इस तकनीक को "mindful prostration" कहते हैं। हिंदी में इसे ''जागरुकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम'' कहा जा सकता है। यह विधि वैकल्पिक है, और साधक इसे अपनी इच्छा अनुसार अभ्यास करने अथवा न करने का चुनाव कर सकते हैं।

साष्टांग प्रणाम एक ऐसी प्रथा है जो दुनिया के कई धर्मों में पालन की जाती है। बुद्ध को मानने वालों के बीच यह अभ्यास, मूलतः किसी को आदर देने के लिए किया जाता है, जैस की माता–पिता, गुरुजन, या धार्मिक गुरुओं के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के लिए। कुछ अन्य धर्मों के लोग इस विधि को किसी पूजनीय विषय और पूजा की तरह भी इसका अभ्यास करते हैं, जैसे कि–परमात्मा, देवदूत, अथवा दूसरी दुनिया के/इसी दुनिया अन्य पूजनीय जन।

परन्तु यहाँ पर, साष्टांग प्रणाम ध्यान साधना के प्रति ही सम्मान प्रकट करने का एक साधन है। यह एक तरीका है जिससे कि साधना के प्रति अपनी लगन, विनम्रता और सराहना को बढ़ावा दिया जा सके। इसलिए साधक को यह बात स्मरण रहे कि ध्यान साधना सिर्फ एक शौकिया खेल या फिर मनोरंजन नहीं है, बल्कि एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रशिक्षण है, जो अपने आप में सम्मान का अधिकारी है।

इससे भी ज्यादा, यह एक बार ऐसा अभ्यास है जो ध्यान साधना का प्रारंभिक प्रशिक्षण दे सकता है, क्योंकि इससे शरीर के कई अंगों को बार–बार हरकत में लाना होता है, जिससे शरीर की हर हरकत पर, एकाग्र होने का मौका मिलता है।

गौरतलब है कि, जो पाठक भारतीय परम्पराओं को समझते हैं, जानते हैं, हो सकता है कि वह मंदिर में जाकर या फिर नमाज़ अदा करते समय साष्टांग प्रणाम का पालन करते हों। अगर आप ऐसे साधक हैं जो इस क्रिया को पहले भी कर चुके हैं, तो इस बात पर ख़ास गौर कीजिए कि आपकी विधि और इस विधि में सबसे बड़ा फर्क यह है कि यहाँ हर छोटे–छोटे पल में ''जागरुकता'' का बहुत ज्यादा महत्त्व है। ध्यान साधना के आगे बढ़ने के लिए जागरुकता को पल–पल पालन करने का प्रयास करना बहुत ही जरूरी है।
जागरुकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम करने का तरीका इस प्रकार है:–
1. सबसे पहले अपने घुटनों के बल बैठिये या तो पैरों की अँगुलियों का सहारा लेकर अथवा तलवों के सहारे। पुस्तिका के अंत में दी हुई चित्र श्रेणी को देख सकते हैं। इस आसन को समझने के लिए चित्र क्रमांक (क) 1 और (ख) देखें।

2. अपनी पीठ को सीधा रखते हुए अपनी हथेलियों का अग्रभाग नीचे की तरफ करके उन्हें अपनी जाँघों पर रखिये। चित्र क्रमांक: (1) देखें।

अब संपूर्ण चेतना को वर्तमान में स्थापित करते हुए अपनी दायीं हथेली को नब्बे डिग्री के कोण में घुमाएं इस तरह की वह ज़मीन के साथ सीध मे आ जाए। चेतना को वर्तमान में स्थापित करने के लिए, हम पहले बतायी गयी विधि का पुनः उपयोग करेंगे। जब हथेली जगह से उठे (घूमने के लिए) तो मन को इसी क्रिया में केन्द्रित करते हुए सचेत रहेंगे कि ''घूम रही है'', जब हथेली आधी घूम जाए तो सचेत रहेंगे ''घूम रही है'' फिर जब हथेली पूरी तरह घूम जाए तो फिर पल पल की जागरुकता रखते हुए मन को वर्तमान के प्रति सचेत करेंगे ''घूमी'' (2). जैसा कि आप समझ रहे होंगे कि हथेली घुमाने की यह क्रिया तीन चक्रों में पूरी होती है।

इन चक्रों के दौरान जागरुकता कहीं खो न जाए और हथेली की हर हरकत के साथ बनी रहे इसीलिए हम इन शब्दों का प्रयोग करते हैं।

अब अपना दायाँ हाथ अपने सीने की तरफ धीरे–धीरे ऊपर उठाइये, और आपके हाथ का अंगूठा आपके सीने को छू सके बस उस से ज़रा पहले रुक जाईये–इस क्रिया के दौरान फिर जागरुकता के साथ अपने आप को सचेत करिये–''उठ रहा है–उठ रहा है'' (3) फिर अपने अंगूठे का सीरा अपने सीने से लगाईये और अपने स्पर्श को महसूस करते हुए जागरुक रहिये–''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (4) अब यही प्रक्रिया अपने बाएं हाथ से दोहराइए। एक बार फिर, इस तरह–''घूमा घूमा'' (5)–''उठ रहा है, उठ रहा है'' (6)– ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (7) और आखिर में अपनी दोनों हथेलियों को सीने से स्पर्श कराते हुए एक साथ जोड़ लीजिये।

अब दोनों जुड़े हुए हाथों को उसी स्थिति में ऊपर अपने माथे की ओर ले जाइए। हाथों को ऊपर उठाते समय फिर जागरुक रहेंगे–''उठ रहा है, उठ रहा है'' (8)–जब अंगूठों के नाखून माथे को स्पर्श करने लगें तब उस स्पर्श को पुनः महसूस करते हुए स्वयं को जागरुक रखेंगे–''स्पर्श स्पर्श'' (9) इसके बाद धीरे धीरे हाथों को पुनः नीचे छाती के पास ले जाते हुए जागरुक रहें–''नीचे नीचे'' (10) सिर्फ जब हाथ सीने को छूने लगे तो सचेत रहें–''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (11) अब हम प्रणाम करना आरंभ करेंगे: अपनी पीठ को 45 डिग्री के कोण में झुकाएंगे और जागरुक रहेंगे–''झुका झुका झुका'' (12) फिर अपने दायें हाथ को घुटनों के आगे वाली जमीन पर धीरे धीरे नीचे रखेंगे, जागरुक रहेंगे– "नीचे नीचे नीचे'' (13) जब हथेली जमीन की सीध में खड़े हो तो उसके एक छोर पर जहाँ वह ज़मीन को छू रही है, वहाँ हथेली ज़मीन को छू रही हो तो स्वयं को जागरुक करेंगे–''स्पर्श स्पर्श स्पर्श" (14) जब हाथ पूरी तरह से ज़मीन पर रक्खें (ऐसे की पूर्ण हथेली ज़मीन को छू रही हो) तो स्वयं को जागरुक करेंगे–''स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका'' (15) ठीक यही क्रिया बाएँ हाथ से भी दोहराएंगे–''नीचे नीचे नीचे'' (16) ''स्पर्श स्पर्श'' (17) ''स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका'' (18) दोनों हाथों से जब क्रिया पूरी होगी तब दोनों हथेलियां एक दूसरे के बगल में होंगी, दोनों के अंदाज़न बीच चार इंच की दूरी होनी चाहिए और दोनों अंगूठे एक दूसरे से स्पर्श करते होने चाहिये। अब अपना सिर अपने अंगूठों की ओर नीचे झुकाते हुए जागरुक रहेंगे–''झुक रहा हूँ–झुक रहा हूँ'' (19) जब आपके माथे का स्पर्श आपके हाथों के अंगूठों पर हो तो जागरुक रहेंगे ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (20) अब अपनी पीठ और सिर को दुबारा सीधा करेंगे व जागरुक रहेंगे ''उठ रहा हूं, उठ रहा हूं'' (21) यह पहला साष्टांग प्रणाम है।

जब आपके हाथ सीधे हों, तब ऊपर जिस तरह से जागरुक रहकर साष्टांग प्रणाम करने की विधि समझाई गयी है, इस पूरी प्रक्रिया को बिल्कुल उसी तरह एक बार फिर दोहराएँ। फर्क बस इतना होगा कि इस बार आप हाथों को ज़मीन पर रखकर ही शुरू करेंगे, जाँघों पर नहीं। स्वयं को जागरुक करें: दाहिने हाथ को घुमाते समय ''घूमा घूमा घूमा'' (22) फिर ''उठा उठा उठा'' (23) फिर ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (24) अब बायें हाथ के साथ भी यही प्रक्रिया दुबारा करेंगे: ''घूमा घूमा घूमा (25) फिर ''उठा उठा उठा'' (26) फिर ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (27) इस बार जब आप अपना बायां हाथ उठायें तो आपको अपनी पीठ भी सीधी करनी है, 45 डिग्री के कोण से लौट कर फिर एक सीध में। पीठ सीधी करने की क्रिया को लेकर अलग से जागरुक होने की आवश्यकता नहीं है, केवल बायां हाथ सीने के पास लाते समय अपनी पीठ सीधी कर लें। अब अपने दोनों हाथों को दोबारा माथे के पास लेकर जाएँ जागरुक रहते हुए: ''उठा–उठा'' (28) ''स्पर्श–स्पर्श'' (29) फिर माथे से हाथ उतार कर फिर नीचे सीने के पास लायें। ''नीचे नीचे नीचे'' (30) तत्पश्चात उनका स्पर्श ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (31) अब अपनी पीठ को एक बार फिर झुकाएंगे, जागरुकता के साथ–''झुकी झुकी झुकी"1 अंत में एक बार फिर अपने हाथों को एक–एक करके नीचे ले जायेंगे–पहले दाहिना हाथ–''नीचे नीचे नीचे'', ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'', एक बार फिर ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका'', अब बायां हाथ–''नीचे नीचे नीचे'', ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'', एक बार फिर ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका'', दोबारा हाथों के अंगूठों को माथे से छुआएँ और जागरुक रहकर क्रिया दोहराएँ–''झुकी झुकी झुकी'', ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'', अब पीठ को सीधी करके फिर एक बार–''उठा उठा उठा''. यह दूसरा साष्टाँग प्रणाम है, इसके बाद यही प्रक्रिया तीसरी बार फिर करनी है। इसके लिए चित्रावली क्रमांक 22 से शुरू करके फिर व्याख्या देखी जा सकती है।

जब तीसरी बार जागरुकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम पूरा हो जाये तब पहले की तरह दाहिने हाथ से शुरू करते हुए फिर ऊपर आ जाएँ: ''घूमा घूमा घूमा'', ''उठा उठा उठा'', ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' अब बायां हाथ: ''घूमा घूमा घूमा'', ''उठा उठा उठा'', ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' अब दोनों हाथों को दोबारा माथे के पास ले आयें। हाथ ऊपर उठाते समय जागरुक रहें ''घूमा घूमा घूमा'', ''उठा उठा उठा'', माथे पर अँगुलियों का स्पर्श महसूस करते हुए: ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'', हाथों को सीने के पास ले जाते समय एक बार फिर–''नीचे नीचे नीचे'' और फिर सीने पर उनका स्पर्श ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श''। इसके साथ तीन बार जागरुकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम हो जाता है, तो चैथा प्रणाम करने के बजाये हाथों को एक बार फिर उसी स्थिति में लाना है जहाँ से शुरू किया था। जाँघों के ऊपर–दाहिने हाथ से शुरू करते हुए हाथ के नीचे जाने के प्रति जागरुक रहे–''नीचे नीचे नीचे'' (32) ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (33) ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका'' (34) अब बायां हाथ जागरुकता के साथ–''नीचे नीचे नीचे'' (35) ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श'' (36) ''स्पर्श स्पर्श स्पर्श/ ढका ढका '' (37)

जब साधक जागरुकता पूर्वक साष्टांग प्रणाम की पूरी क्रिया समाप्त कर ले तब, उसे चलते हुए ध्यान फिर बैठ कर ध्यान लगाना चाहिए। यह ज़रूरी है कि, ध्यान के एक तरीके से दूसरे तरीके में प्रवेश करते समय साधक पूरी तरह जागरुक रहे। ऐसा करते समय अपने शरीर की स्थिति में जैसे जैसे हरकत हो, उसे हर एक पल में हर हरकत के प्रति सचेत रहना

चाहिए न कि जल्दबाज़ी में अपनी स्थिति बदलनी चाहिए। बैठ कर ध्यान करने के बाद खड़े होने से पहले जागरुक होना चाहिए–''बैठक–बैठक'' (38) और जब धीरे धीरे खड़े हो जाएँ तो सचेत रहें–''खड़ा/खड़ी हूँ–खड़ा/खड़ी हूँ'' (39) एक बार जब आप खड़े हो जाएँ तो ध्यान को निरन्तर बनाये रखने के लिए, बिना रुके तुरंत ही चलना शुरू कर दें। जागरूकतापूर्वक साष्टांग प्रणाम का अभ्यास चलकर ध्यान लगाने में ठीक उसी तरह सहायक होगा जिस तरह चलकर ध्यान लगाना बैठक में ध्यान लगाने के लिए सहायक होता है।

जब ध्यान साधना बहुत अधिक तीव्रता से की जाती है, तब साधकों को निम्न तरह से अभ्यास करने को सिखाया जाता है: साधना की एक कड़ी समाप्त होने पर उन्हें थोड़ा आराम करने को कहा जाता है और आराम की अवधि समाप्त होने पर फिर से शुरू से पूरी क्रिया का अभ्यास करने को कहा जाता है। ऐसे कड़ी दर कड़ी वह अभ्यास करते हैं, एक सीमित अवधि के लिए। यह अवधि अक्सर एक बार में 24 घंटों की होती है। जब यह 24 घंटे पूरे हो जाते हैं तो साधक अपने गुरु से मिलता है और अपने अनुभव बताता है साथ ही अगले पाठ में क्या करना होगा, इसका आदेश भी प्राप्त करता है। ध्यान साधना का अगला पाठ अक्सर पहले से ज्यादा जटिल होता है।

यह पुस्तिका ध्यान साधना के प्राथमिक अभ्यास के नज़रिये से नौसिखियों के लिए लिखी गयी है, इसलिए ध्यान की जटिल तकनीकों के बारे में यहाँ नहीं बताया गया है। यदि कोई साधक आगे और भी प्रशिक्षण पाना चाहता है तो, वह पहले इन ऊपर बतायी तकनीकों पर कुशलता हासिल करे और उसके बाद यदि चाहे तो अपने लिए किसी योग्य गुरु को ढूंढ़ कर उनसे आगे का ज्ञान प्राप्त करे। यदि किसी कारण से कोई व्यक्ति ध्यान साधना में औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त करने की स्थिति में न हो तो ऐसा व्यक्ति दिन में एक या दो बार इस विधि का अभ्यास करे और सप्ताह में या महीने में कुछ दिन चुनकर अपने गुरु से साधना के बारे में विचार विमर्श करे। इससे वह धीरे धीरे करके अपनी साधना को आगे बढ़ा सकेगा।

इसी के साथ, ध्यान साधना के औपचारिक पाठ समाप्त होते हैं। अगला अध्याय ध्यान साधना को अपने दैनिक जीवन में किस तरह ढालना चाहिए पर आधारित है। एक बार फिर मैं ध्यान साधना में आपकी रूचि के लिए आपका आभार प्रकट करता हूँ और आपके लिए सुख शान्ति और सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति की कामना करता हूँ।

टिप्पणी:
1.चित्रों सहित व्याख्या में चित्र क्रमांक 12 से लेकर 31 तक जैसे पहले समझाया गया है, बिल्कुल उसी तरह पूरी प्रक्रिया दूसरी और फिर तीसरी बार दोहरायी जानी है।

अध्याय–छठा
दैनिक जीवन में ध्यान साधना

इस बिन्दु पर प्राथमिक ध्यान साधना के औपचारिक पाठ पूरे हो चुके हैं। अब तक के अध्यायों में जो शिक्षण के सोपान दिए गए हैं वह एक नए साधक को इस लायक बना देते हैं कि वह सत्य को तत्त्व से और यथार्थ में ही अनुभव कर पाने के मार्ग पर अपनी शुरुआत कर सके।

इस अध्याय में यह समझाने का प्रयास करूंगा कि ध्यान साधना को अपने रोज के दैनिक जीवन में कैसे ढाला जाए जिससे कि जब साधक/साधिकाएं औपचारिक तरीके से ध्यान करने की स्थिति में न हों तब भी वह निरंतर इसे अपने जीवन में शामिल कर सकें। ऐसा करने से बुनियादी स्तर पर भी व्यक्ति जागरूक रहकर साधना कर सकेगा।

सबसे पहले, यह ज़रूरी है कि, कुछ ऐसी गतिविधियों से सावधान रहा जाए, जो मानसिक स्पष्टता में हानिकारक हो सकती हैं। इन गतिविधियों का ज्ञान इसलिए ज़रूरी है कि इनसे ध्यान साधना के लाभ निरन्तर प्राप्त किये जा सकते हैं।

जैसा कि मैंने पहले पाठ में भी बताया था, अंग्रेजी शब्द–''मैडिटेशन'', अंग्रेजी के ही शब्द ''मेडिसिन'' से मिलता जुलता है। जब कोई किसी दवा का सेवन कर रहा हो तो उसे कई अन्य पदार्थों/गतिविधियों से परहेज करना होता है। ऐसा न करने पर, कई बार गंभीर दुष्परिणाम सामने आ सकते है। जैसे कि, दवा अन्य गतिविधि अथवा अपदार्थ से अगर मिल जाए, जो मुमकिन है कि वह दवा के फायदों को नकार दे या फिर हो सकता है कि वही दवा कहीं जहर का रूप ले ले और शरीर को उल्टा नुकसान पहुंचाने लगे। ठीक इसी तरह से कुछ ऐसी भी गतिविधियां हैं, जो कि मन को भ्रमित कर देती हैं और जिनसे ध्यान साधना से होने वाले लाभ में खलल पैदा हो सकती है। ऐसी गतिविधियों से मुमकिन है कि वृद्धि होने के बजाये इसका विपरीत ही परिणाम हो।

ध्यान साधना इसलिए भी की जाती है कि मन में स्पष्टता और समझदारी आए, मन को घृणा, नशे की लत और भ्रम से मुक्ति मिल सके। देह और मन के कुछ ऐसी गतिविधियां और कर्म होते हैं, जो मन के नकारात्मक गुणों से जुड़े हुए होते हैं। ऐसे कर्मों से ध्यान साधना एवं स्वयं को नुकसान पहुँच सकता है। ध्यान साधना से साधक जो लाभ प्राप्त करना चाहता है, यह कर्म ठीक उसका उल्टा ही नतीजा देते हैं। यह कर्म मन को स्वच्छ बनाने के बजाये उल्टा दूषित करते हैं।

जो साधक ऐसी हरकतों/कर्मों को बढ़ावा देते हों, वह अक्सर ध्यान साधना को सफल बनाने में बहुत कठिनाइयों का सामना करते हैं। ऐसे कर्म केवल ध्यान साधना के लिए ही नहीं बल्कि व्यक्तिगत तौर पर भी बहुत हानिकारक होते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कि मन साफ़ है और सत्य का अनुभव करने के लिए सक्षम है, साधक को चाहिए कि वह अपने कर्मों में संतुलन बनाए और विशेष तौर पर कुछ कर्मों/गतिविधियों से दूर रहे।
सबसे पहले ऐसे पाँच विशिष्ट कर्म हैं जिनसे हर व्यक्ति को दूर रहना चाहिए क्योंकि यह अपने मूल स्वभाव से ही नुकसान पहुंचाते है:1

1. **किसी भी जीवित प्राणी की हत्या से बचें:**
स्वयं सुख का अनुभव प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि व्यक्ति ''सुख'' को सिद्धांत बनाकर उसके लिए पूरी तरह से समर्पित हो। ऐसा करने के लिए हमें सभी तरह के प्राणियों के जीवन का सम्मान करना चाहिए और उन्हें भी जीने देना चाहिए, फिर चाहे वह प्राणी मच्छर–मक्खी ही क्यों न हो।

2. **चोरी न करें:**
मन की शान्ति प्राप्त करने के लिए हमें यह चाहिये कि हम दूसरों को भी मन की शान्ति का अवसर प्रदान करें। चोरी किसी भी व्यक्ति के सुरक्षा के वातावरण के खिलाफ है। इसके अलावा अगर हम नशों से मुक्ति पाना चाहते हैं तो हमें दूसरों के अधिकारों का सम्मान करते हुए अपनी इच्छाओं पर काबू रखना चाहिए।

3. **व्यभिचार और दूसरे प्रकार के दुराचार से परहेज करें:**
जब कोई लोग पहले से ही किसी के प्रति रिश्ते जोड़ कर उन रिश्तों से वचनबद्ध हों तो ऐसे व्यक्तियों के लिए नए रिश्ते कायम करना आध्यात्मिक और भावनात्मक तौर पर बहुत हानिकारक हो सकता है, स्वयं के लिए भी और साथी के लिए भी। इस तरह कामवृत्ति से दुःख और तनाव इंसान को घेर लेते हैं।

4. **झूठ बोलने से बचें:**
जो व्यक्ति सत्य की खोज की कामना रखता हो, उसे चाहिए कि वह झूठ से बचे। जानबूझकर दूसरों को झूठ की तरफ धकेलने से दूसरों को ही नहीं स्वयं को भी नुकसान होता है। और यह कर्म ध्यान के उद्देश्यों का परस्पर विरोधी है।

5. **किसी भी नशीले पदार्थ के सेवन से बचना चाहिए:**
स्वच्छ व निर्मल मनःस्थिति, नशीली मनःस्थिति के विपरीत है। इसलिए यह बहुत ही सीधी सी बात है कि किसी भी ऐसे पदार्थ का सेवन, जो मन को साफ़ और निर्मल स्थिति से दूर रक्खें, ध्यान साधना के बिल्कुल विपरीत है।

यदि कोई साधक अपनी ध्यान साधना प्राप्त करने की कामना करता है तो ऊपर बताये गए पाँच नियमों का पालन अनिवार्य होता है। क्योंकि यह कर्म स्वाभाविक तौरपर हानिकारक होते हैं और मन को हमेशा ही नुकसान पहुँचाते हैं।

आगे ऐसे भी कुछ कर्म हैं जिन पर साधक को अपना नियंत्रण रखना चाहिए, ऐसा न होने पर यह ध्यान साधना के रास्ते का रोड़ा बन सकते हैं। कुछ ऐसे कर्म जो स्वभाव से वैसे तो बुरे नहीं है, किन्तु अगर इन पर से नियंत्रण खो जाए या इनकी अति हो जाए तो ध्यान साधना से होने वाले फायदों को कम कर सकते हैं ।2

ऐसा एक कर्म है खाना: यदि कोई भी अपनी ध्यान साधना में सफलता पाने की चाहत रखता है तो उसे ख़ास सावधानी बरतनी चाहिए कि खाना बहुत कम न हो और बहुत ज्यादा भी न हो। अगर मन लगातार खाने के बारे में ही सोचता रहे तो, न सिर्फ शरीर के लिए बल्कि मन के लिये भी यह बहुत ही हानिकारक कर्म है, क्योंकि इससे आलस्य और सुस्ती को बढ़ावा मिलता है और यह मन को भ्रमित भी करता है। व्यक्ति को जीने के लिए खाना चाहिए न कि खाने के लिए जीना। जब साधक कड़ी ध्यान साधना करते हैं तो वे केवल दिन में एक बार भर पेट भोजन करते हैं, और ऐसा करने से उनके शरीर को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। बल्कि उन्हें खाने के नशे से आज़ादी मिलती है और उनके मन को भ्रम से।

एक और कर्म जो ध्यान साधना में विघ्न डालता है, वह है– मनोरंजन– जैसे फ़िल्मे देखना, गाने सुनना, इत्यादि। यह कर्म वैसे तो स्वभाव से, हानिकारक नहीं होते, किन्तु जब इन पर से नियंत्रण खो जाए और इनकी अति हो जाए तो यह नशे का रूप भी ले सकते हैं। कोई नशा या लत वैसे ही नुकसान पहुँचाता है जैसे कि शराब। क्योंकि, जब नशा होता है तो दिमाग में एक तरह के रसायनिक बदलाव आते हैं जिनसे मन की निर्मलता नहीं रहती। मनोरंजन से या अन्य किसी लत से सुख तो मिलता है, मगर ऐसा सुख बस कुछ ही पलों का होता है, कुछ देर के बाद इसका अंत हो जाता है और इंसान को फिर से उसी वस्तु की चाह होने लगती है। इस तरह मन में हमेशा एक कोलाहल मचा रहता है और इंसान अक्सर लतों से पूरे जीवन में अपना पीछा नहीं छुड़ा पाता है। इसलिए ऐसे साधक जो अपनी साधना को गम्भीरता से लेते हों, उन्हें इस पर विचार करना चाहिए कि जिस काम से उन्हें बस कुछ ही पलों का सुख मिलता हो, ऐसे कर्मों में अपने सीमित जीवन का शेष समय बर्बाद न करते हुए, उसे ऐसे कर्म में लगाएं जिससे, अनन्त सुख मिल सके। यदि कोई वास्तव में सुख चाहता है तो उसे अपने समय की कीमत को समझते हुए उसे नियंत्रित रखना चाहिए। इंटरनेट, फिल्में, या अन्य किसी भी मनोरंजन को नियंत्रण में रखना चाहिए।

सोना/निद्रा– वह तीसरा कर्म है जिस पर नियंत्रण रखना चाहिए: नींद एक ऐसी लत हैं, जिसे अक्सर नजरअंदाज कर दिया जाता है। ज्यादातर लोग यह जान नहीं पाते कि जीवन की कठिनाइयों से बचने के लिए वो निद्रा का किस तरह प्रयोग करते हैं। ऐसे में निद्रा से मोह हो जाता है। बहुत से ऐसे भी लोग हैं जिन्हें लगता है कि उन्हें नींद पर्याप्त मात्रा में नहीं मिल पा रही है, जिससे उनमें तनाव बढ़ जाता है और वो अनिद्रा के रोग से ग्रसित हो जाते हैं।

ध्यान साधना करने से नींद की ज़रूरत वैसे भी कम हो जाती है। साधक को कभी अनिद्रा का रोग नहीं होता, क्योंकि वह लेटे–लेटे भी ध्यान का अभ्यास कर सकता है और तनाव मुक्त रहता है। जो लोग अनिद्रा से ग्रस्त हों, उन्हें लेटे–लेटे अपने साँसों के साथ होने वाले पेट के उतार चढ़ाव को महसूस करना चाहिए, अगर ज़रूरत पड़े तो पूरी रात भी। ऐसा करने से बहुत मुमकिन है कि उन्हें जल्दी ही नींद आ जायेगी, मगर यदि न भी आयी तब भी उन्हें रात भर नींद जैसा ही आराम मिल जाएगा।

आखिर यह बात अति उल्लेखनीय है कि अपनी साधना को गंभीरता से लेने वाले साधक, अपने यौन जीवन पर भी नियंत्रण रक्खें। इस नियंत्रण में ज़रूरी है कि न सिर्फ अनैतिक सम्बन्धों से बचा जाए बल्कि किसी भी तरह के शारीरिक यौन सम्बन्ध से बचा जाए। क्योंकि सम्भोग/मैथुन अपनी स्वाभाविक प्रकृति से ही नशे के समान है और यह निःसंदेह मन की सफाई और सुख–शान्ति के रास्ते में बाधा बनेगा।

जब साधक इन सभी नियमों का पालन ईमानदारी से करें तब वे अपने दैनिक जीवन में साधना को शामिल करने को तैयार हो जाते हैं। रोज के जीवन में किसी भी आम अनुभव में ध्यान लगाया जा सकता है और यह करने के दो तरीके हैं। यह दोनों ही तकनीकें एक साथ अभ्यास में लानी चाहिये ।

पहला तरीका है: चेतना को अपने शरीर पर केन्द्रित करना। शरीर हर पल हमारे हर अनुभव का हिस्सा है। औपचारिक ध्यान साधना में भी हम शरीर को माध्यम बनाते हैं, क्योंकि यह हर समय हमारे पास हैं। आमतौर पर यह शरीर चार में से एक मुद्रा में होता है–लेटना, बैठना, चलना, खड़ा होना। हम अगर अपनी वर्तमान शारीरिक मुद्रा को ही अपनी चेतना का केंद्र बना लें, तो मन में स्पष्टता और शुद्धि आएगी। उदाहरण के तौर पर चलते समय साधक चेतना को केन्द्रित करे और

सजग रहे–''चल रहा हूँ'' अथवा अपने पैरों की हरकत के साथ जागरुक रहे–''दायां–बायां–दायां–बायां''। यह करने से कोई भी इंसान किसी भी समय अपने मन में स्पष्टता लाने के लिए उसे प्रशिक्षित कर सकता है।

आगे, यही विधि इंसान अपने दैनिक जीवन में किसी भी समय प्रयोग में ला सकता है। उदाहरण है–अंगड़ाई लेते समय वह हर पल जागरूक रहे और महसूस करें–''हाथ उठे''–''शरीर तना''–''हाथ नीचे'', अगर इस विधि को अपने जीवन का हिस्सा बनाया जाए तो कोई भी काम ध्यान साधना बन सकता है। आप जहाँ भी हों, साधना कर सकते हैं। मंजन करते समय जागरुक रहकर महसूस करें–''मंजन मंजन'' खाना चबाते समय जागरुक रहकर महसूस करें–''चबाना चबाना'', ''निगलना निगलना''।

खाना पकाना, सफाई करना, नहाना, व्यायाम करना, कपड़े बदलना, बर्तन धोना यहाँ तक कि शौच के समय भी पल–पल जागरुक रहकर साधना की जा सकती है। यह पहला तरीका है, जिससे कि लोग अपने जीवन में स्पष्टता ला सकते हैं, और उन्हें लानी भी चाहिए।

दूसरा तरीका है: अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों पर अपनी चेतना को केन्द्रित करना। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इस प्रकार है: सुनना (कान), देखना (आँखें), स्पर्श महसूस करना (त्वचा), सूंघना (नाक), स्वाद लेना (जीभ), आमतौर पर रोज के जीवन में जो अनुभव हमें यह पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ देती हैं उनसे ''मोह'' अथवा ''द्वेष'' उत्पन्न होते हैं। यही कारण है कि हमारी पाँच इन्द्रियाँ अगर जागरुकता के दायरे के बाहर हो जाएँ तो हम में ''नशा/लत'' और घृणा उत्पन्न हो जाती है। घृणा और नशा उत्पन्न होने से हमारे दुःख आरम्भ होते हैं।

मन में स्पष्टता उत्पन्न कर सकने के लिए–साधक को चाहिए कि वह पल–पल अपनी चेतना अपनी इन्द्रियों पर केन्द्रित करे, इससे पहले कि मन अपनी पड़ी हुई आदतों के अनुसार उस पल का विश्लेषण कर डाले और उसे कोई संज्ञा अथवा विशेषण दे।

इसका तात्पर्य यह है कि हमें कोई भी विश्लेषण किये बिना, किसी भी अनुभव को तोले बिना, सिर्फ अकेले अनुभव को जागरुक रहकर महसूस करना चाहिए। देखते समय हमें दृश्य का विश्लेषण किये बिना सिर्फ जागरुक रहना चाहिए कि–''देखा'', कानों में आवाज़ आये तो जागरुकता रखनी चाहिए–''सुना–सुना'', कोई गंध आये तो केवल यह ज्ञात रखें–''सूंघा सूंघा''।

''मेरा–उसका, अच्छा–बुरा, मैं–वह, जब साधक अपने अनुभव का वर्गीकरण किये बिना बस अनुभव ग्रहण करेंगे तो उनमें स्वयं ही स्पष्टता की वृद्धि होने लगेगी और साधक जीवन को एक तरह से अनुभव करने लगेगा, बिना किसी मोह के, बिना किसी दुःख के।

इस प्रकार, यह दैनिक जीवन में साधना का प्राथमिक मार्ग है, जहाँ कोई भी व्यक्ति औपचारिक रूप से साधना न करता हुआ भी साधना कर सकता है। इसी विधि से साधक किसी भी विषय का प्रयोग कर सकते हैं, जैसा कि मैंने पहले अध्याय में बताया था–दुःख, विचार और भावना पर भी। तथा इस विधि द्वारा साधक साधना का निरंतर अभ्यास कर स्वयं व यथार्त के बारे में हर सयम सीख सकते हैं।

इसी के साथ प्राथमिक ध्यान साधना का मेरा यह पाठ समाप्त होता है। यह बात याद रखने योग्य है कि कोई भी पुस्तक, चाहे वह कितनी भी विस्तृत क्यों न हो, लगन के साथ की गयी साधना और अभ्यास की जगह नहीं ले सकती। यदि इस पुस्तक में जो नियम बताये गए हैं, इन पर कोई साधक पूरी लगन और सच्चाई के साथ अमल करे, तो यह बात निश्चित है कि उसे भी वही अनेकों अनेक सुख प्राप्त होंगे जो आज तक साधकों को प्राप्त हो चुके हैं–सुख शान्ति और सही मायनों में आजादी।

इस पुस्तिका और ध्यान साधना में आपकी रूचि के लिए मैं एक आख़री बार आप सब पाठकों का आभार प्रकट करना चाहता हूँ। मैं आप सबके लिए और उन सबके लिए, जो आपके संपर्क में आते हैं, ऐसी कामना करता हूँ कि आपको सुख शान्ति और सभी दुःखों से हमेशा के लिए मुक्ति मिले।

अगर आपको इस पुस्तिका के पन्नों पर कुछ भी स्पष्ट न हो रहा हो, या कोई कमी महसूस हो रही हो या आप ध्यान साधना में ज्यादा विस्तृत निर्देश चाहते हैं तो आप मुझ से संपर्क कर सकते हैं, मेरे वेबलॉग पर। मेरे वेबलॉग का पता है: http://yuttadhammo.sirimangalo.org/

टिप्पणी:

1.यह पाँच कर्म गौतम बुद्ध द्वारा बताये गए ''पंचशील'' के समरूप है ।

2.यह ऐसे नियम हैं, जो आमतौर पर बौद्ध ध्यान साधक कड़ी साधना के समय या छुट्टी के दिन वचन के रूप में निभाते हैं। यह तीन नियम पहले बताये गए पांच नियमों से जुड़ जाते हैं और साधक/साधिकाएं पूर्णतः ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

आगे है: चित्रों सहित व्याख्या (चित्रावली)

परिशिष्ट
चित्रावली

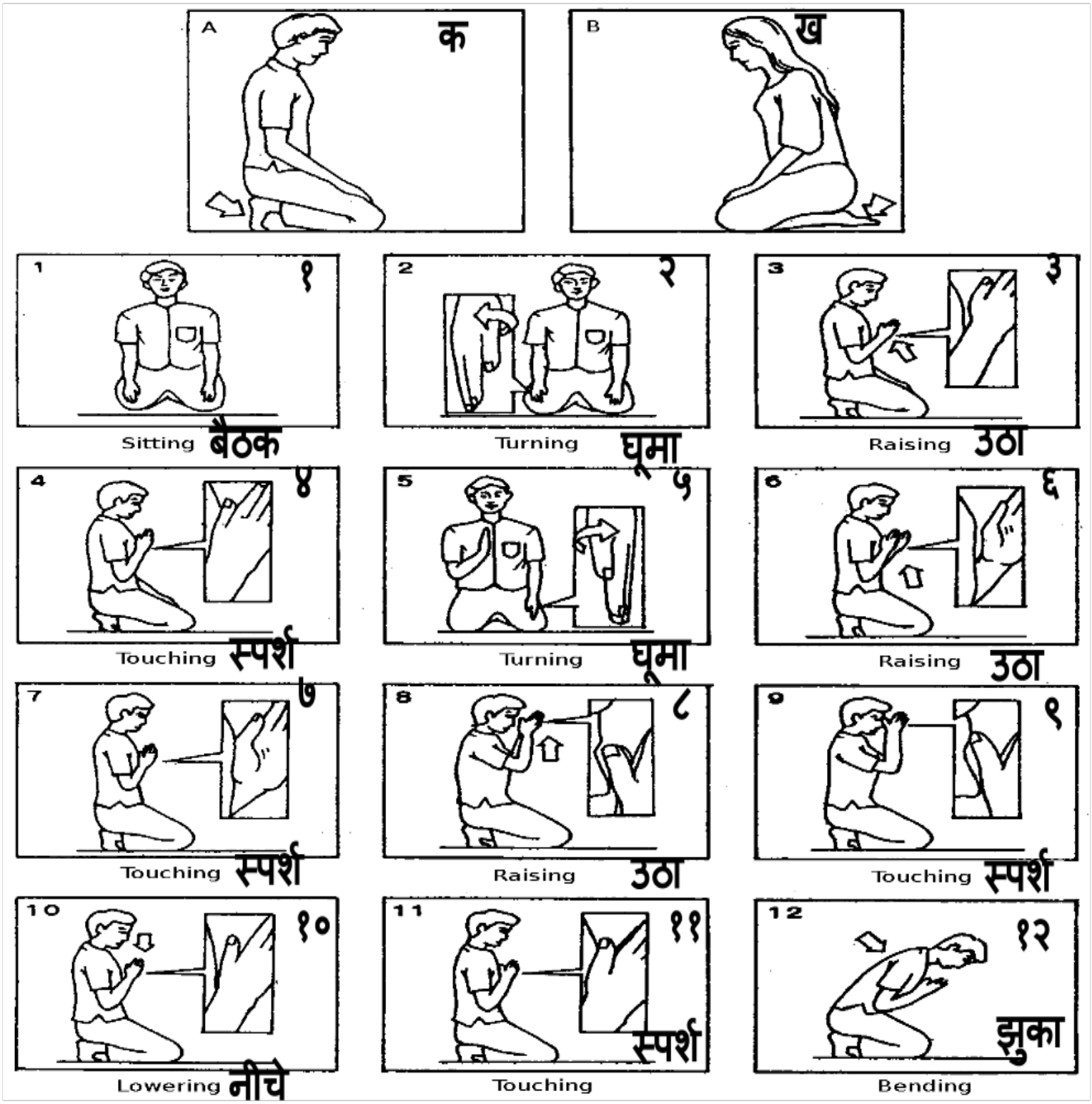
A
क
B
ख
1
१
Sitting बैठक
2
२
Turning घूमा
3
३
Raising उठा
4
४
Touching स्पर्श
5
५
Turning घूमा
6
६
Raising उठा
7
७
Touching स्पर्श
8
८
Raising उठा
9
९
Touching स्पर्श
10
१०
Lowering नीचे
11
११
स्पर्श
Touching
12
१२
झुका
Bending

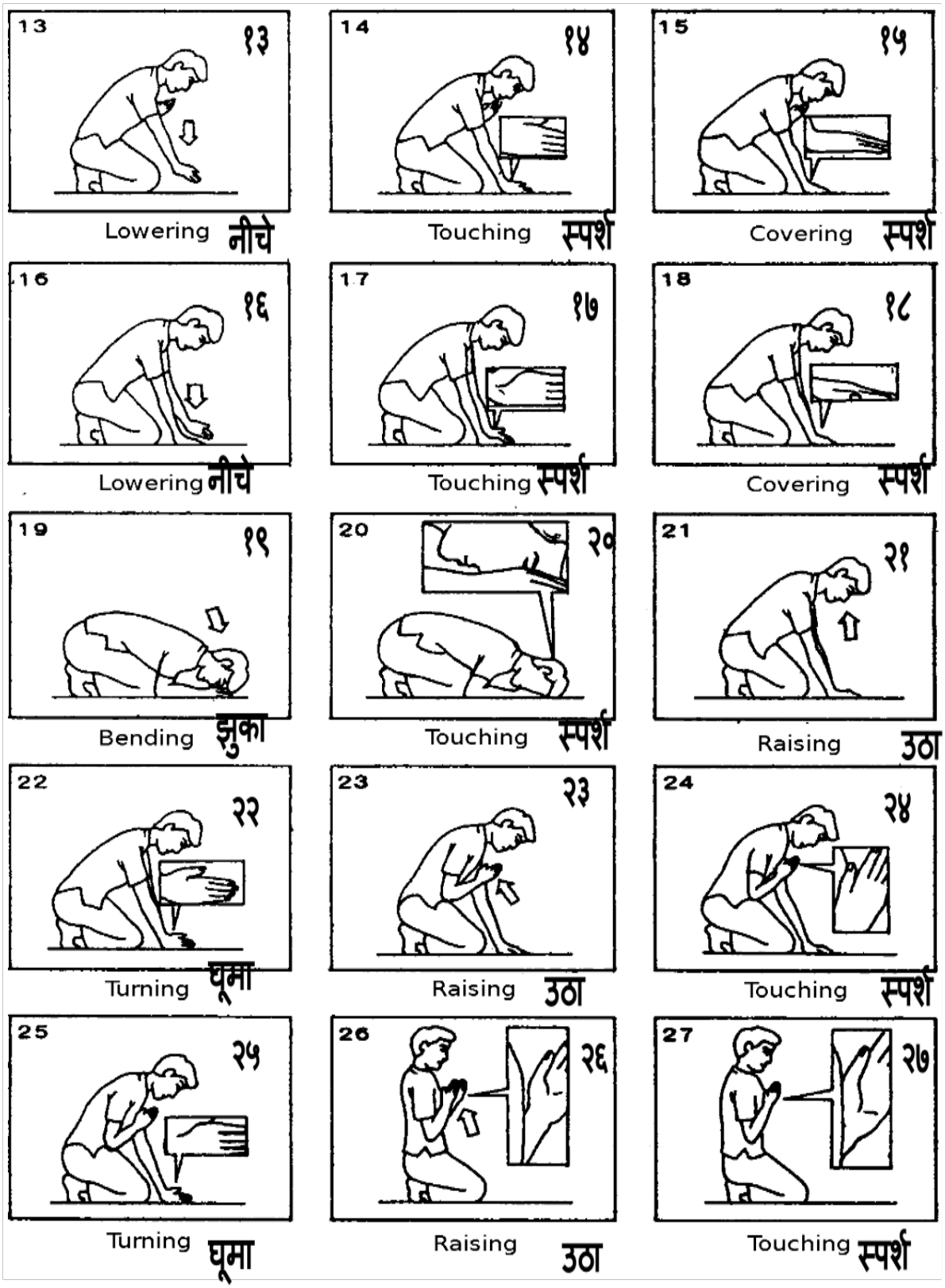

१२ से ३१ तक पुनः दो बार करें। उस के बाद ३२ से शुरू करें

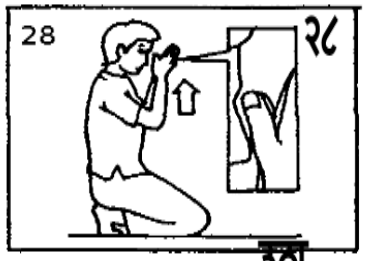

Raising उठा

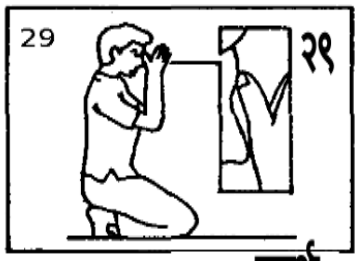

Touching स्पर्श

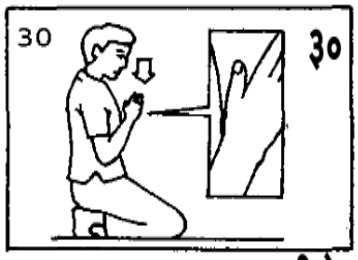

Lowering नीचे

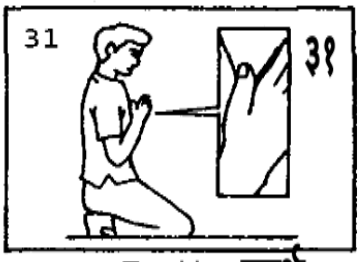

Touching स्पर्श

Repeat 12 to 31 two more times, then continue, starting with 32.

Lowering नीचे

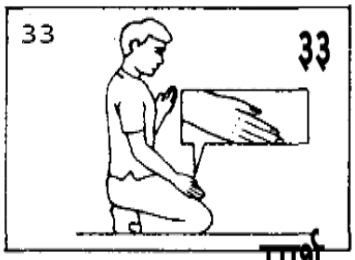

Touching स्पर्श

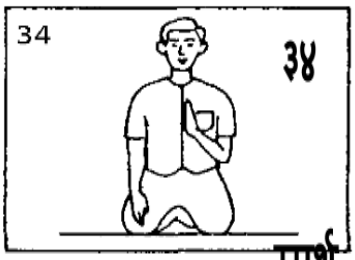

Covering स्पर्श

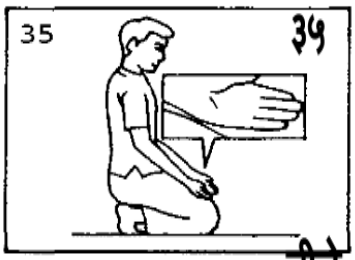

Lowering नीचे

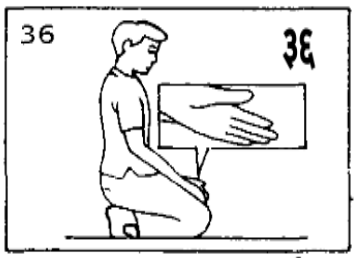

Touching स्पर्श

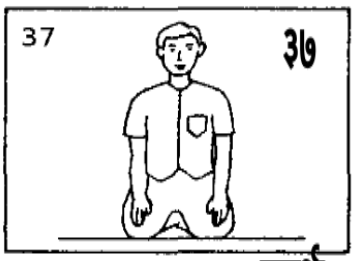

Covering स्पर्श

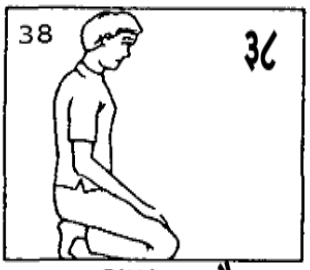

Sitting बैठक

Standing

खड़ा

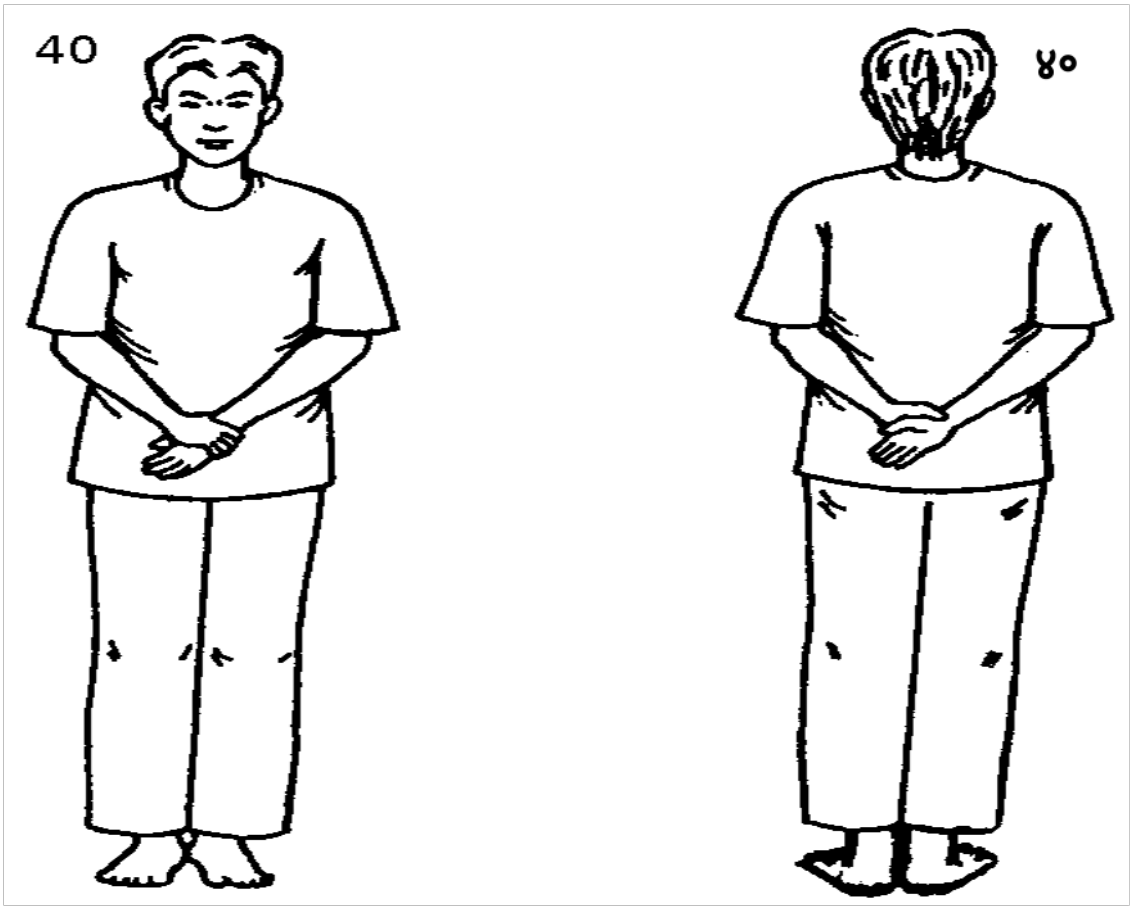
40
४०

41
४१